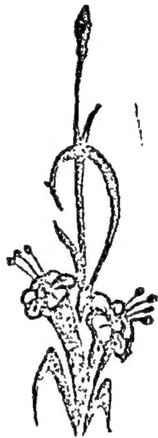
ॐ

रामायण-रहस्य

[तीसरा भाग]



लेखक :--

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य महामण्डलेश्वर

श्री स्वामी आत्मप्रकाश जी महाराज

स्थान--स्वामी बलजीत परमार्थ भवन

सी. के. ८।१०, मणिकर्णिका कुण्ड, वाराणसी-१

द्वितीय बार २०००	बसन्त पञ्चमी सम्वत् २०४५	मूल्य रु० २-००

पुस्तक मिलने का पता—

१. स्वामी बलजीत परमार्थ भवन
सी० के० ८।१० मणिकर्णिका कुण्ड, वाराणसी-१

२. आनन्द धाम
मु०, पो० तपोवनसराय वाया शिवानन्द नगर,
जि० टिहरी गढ़वाल [उत्तराखण्ड]

३. श्री विश्वनाथ वंसिया
बी० ए० प्लास्टिक फैक्ट्री
कोकर, रांची ।

४. विश्वनाथ मणीदेवी क्याल
महादेव वस्त्रालय, कपड़ा पट्टी, सहरसा ।

-:०:-

❋ भूमिका ❋

श्री रामचरित मानस के कुछ प्रसंगों को रामायण रहस्य के प्रथम भाग में कई वर्ष पूर्व अध्यात्म रूप में निरूपित करके प्रकाशित किया गया था। जिसको पढ़ने में जिज्ञासुओं ने बड़ी रूचि दिखाई। अल्प ही समय में उसकी सारी प्रतियां समाप्त हो गईं। बहुत से सत्संग प्रेमियों ने रामायण-रहस्य के दूसरे भाग की बहुत मांग की। किन्तु अवकाश न मिलने के कारण इसे अब तक प्रकाशित न किया जा सका था। अब प्रभू-कृपा से इसका दूसरा भाग प्रकाशित करके जिज्ञासुओं की सेवा में उपस्थित किया जा रहा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह ग्रन्थ जिज्ञासु जनों को लाभ पहुंचायेगा। जिन सज्जनों ने इस पुस्तक के प्रकाशन में किसी भी प्रकार का सहयोग दिया है उन्हें बहुत-बहुत धन्यवाद।

स्वामी आत्मप्रकाश

बसन्तपञ्चमी वाराणसी

बिषय-सूची

-:o:-

पहला अध्याय

श्री हनुमान जी

सन्त गोस्वामी तुलसीदास जी ने साधक के हृदय में उत्पन्न होने वाले वैराग्य को ही श्री रामचरितमानस में श्री हनुमान जी के रूप में चित्रण किया है। इस प्रसंग के द्वारा हम यह समझावेंगे कि साधक के हृदय में वैराग्य कैसे उत्पन्न होता है ? उसका क्या स्वरुप होता है और उससे साधक को क्या लाभ होता है ?

अब इस प्रसंग को अध्यात्म रुप में ऐसे समझो कि साधक के हृदय में वैराग्य रुप हनुमान दो तरह से उत्पन्न हुआ करता है। यदि पूर्व के शुभ सञ्चित संस्कार वश साधक के हृदय में यह विवेक पैदा हो जाये कि मैं संसार के असत् और दुःख रुप भोग पदार्थों को सत् और सुख रुप मानकर ही और मन में इनकी वासना करके ही संसार

के जन्म-मरण रुप चक्कर में फंसा हुआ हूं तो इस शुभ संस्कार से उत्पन्न हुए विवेक रुप लक्ष्मण के प्रभाव से ही साधक के मन में से संसार के भोगों की इच्छा का त्याग होकर वैराग्य रुप हनुमान उत्पन्न हो जाया करता है। यह वैराग्य रुप हनुमान तो साधक को सन्त रुप सुग्रीव की सत्संग रुप भेंट से पहले ही प्राप्त हो जाया करता है और दूसरे जब साधक आत्मानुभवी सन्त रुप सुग्रीव की शरणापन्न होकर उनसे श्रद्धा और सेवा भाव पूर्वक मिलता कर लिया करता है तो सन्त अपनी सत्संग रुप कृपा से उसे विवेक कराकर भोगों की असारता और दुःखरुपता जनाकर उसके हृदय में वैराग्य रुप हनुमान को उसकी साधना की सफलता के लिये उत्पन्न कर दिया करते हैं। जिससे कि साधक भोगों की इच्छा का त्याग करके वैराग्य रुप हनुमान को अपने हृदय में धारण कर लिया करता है अर्थात् साधक की मति रुप अञ्जनी से जब सत्संग के शुभ संस्कार रुप पवन का भीतर में सम्मिलन होता है तो हृदय में वैराग्य रुप हनुमान की उत्पत्ति होती है। सत्संग

द्वारा आत्मा और अनात्मा के विवेक पूर्वक अनात्म दृश्य भोगों को असार और दुःख रुप जानकर जो भोगों की इच्छा का त्याग होता है वही वास्तव में वैराग्य कहलाता है और जो किसी जन या धन आदि वस्तु के नष्ट होने पर या किसी के कष्ट देने पर क्षणिक वैराग्य हो जाया करता है वह वास्तव में वैराग्य नहीं होता। वैराग्य का आभास मात्र ही होता है।

जव साधक के मन में वैराग्य रूप हनुमान प्रगट हो जाया करता है तो साधक के मन से भोगों की आसक्ति, ममता, वासना आदि का अभाव हो जाया करता है। अतः साधक का मन विषय-वासना से रहित होकर आत्मा रुप राम में एकाग्र हो जाया करता है, अर्थात् मन की बहिर्मुखता को नष्ट करके उसे अन्तर्मुख कर देना ही हृदय में प्रगट हुए वैराग्य का स्वरुप है। जितनी-जितनी हृदय में वैराग्य की दृढ़ता होती जाती है, उतनी-उतनी ही वृत्ति बहिर्मुखता रूप विक्षेप को त्यागती जाती है और अन्तर्मुख एकाग्र होकर आत्माकार होती जाती है और जब

वैराग्य की हृदय में पूर्ण दृढ़ता हो जाती है तो मन की बहिर्मुखता नष्ट होकर वह स्वस्वरुप में स्थित हो जाया करता है। अतः मन की बहिर्मुखता और अन्तर्मुखता द्वारा ही वैराग्य को अदृढ़ता या दृढ़ता की पहचान होती है।

साधक के हृदय में जब वैराग्य रुप हनुमान प्रगट हो जाता है तो वैराग्य रुप हनुमान सबसे प्रथम तो साधक का यही लाभ पहुंचाता है कि साधक के मन से भोगों की इच्छा का त्याग कराकर उसमें भोगों की और से संतोष पैदा कर देता है। जिसके कारण मन भोगों की दीनता से छूट जाता है और शरीर की प्रारब्ध के भरोसे छोड़कर पूर्ण निश्चिन्तता का आनन्द प्राप्त कर लेता है। वैराग्य रूप हनुमान ने अपनी निश्चित रहने वाली अवस्था को रामायण में भी इस प्रकार कहा है।

चौ०—सेवक सुत पितु मातु भरोसे।
रहेउ असोच बनइ प्रभु पोसे॥

अतः साधक के मन को भोगों की दीनता से मुक्त करके उसे निश्चिन्त कर देता हो वैराग्य रूप हनुमान का सबसे पहला लाभ साधक को होता है।

वैराग्य रुप हनुमान साधक के हृदय में प्रगट होकर दूसरा उसे यह लाभ पहुंचाया करता है कि साधक के मन को भोगों से उपरत करके उसकी सन्त रुप सुग्रीव से सत्संग में दृढ़ प्रीति रुप मित्रता करा दिया करता है। अर्थात् जब साधक के चित में भोग से वैराग्य होता है तभी वह भोगों से मन को हटा कर श्रद्धा भाव से सन्तों की सत्संग में सच्चा प्रेम करने लगता हैं। उसको सुन कर उसके अनुसार अभ्यास करके अपना सत्संग के प्रति सच्चा प्रेम प्रदर्शित किया करता है। इसी साधक और सन्त रुप सुग्रीव की वैराग्य रुप हनुमान द्वारा दृढ़ मित्रता कराने को रामायण में भी लिखा है।

दो०—तब हनुमन्त उभय दिसि, की सब कथा सुनाई।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाई॥

वैराग्य रुप हनुमान साधक को तीसरा लाभ य। पहुंचाया करता है कि यदि कुसंग वश साधक का विवेक रूप लक्ष्मण कभी भोगासक्ति रूप मेघनाद द्वारा शिथिल कर दिया जाता है अर्थात् कुसंग के प्रभाव से यदि कभी साधक विवेक हीन हो कर विक्षिप्त हो जाता है तो वैराग्य रुप हनुमान ही आत्मानुभवी सुषेन वैद्य के सत्संग द्वार अन्तर्दृष्टि रूप संजीवनी को प्राप्त करके पुनः उसे जाग्रत कर दिया करता कर दिया करता है और विवेक को जाग्रत करके साधक की बहिर्मुखता रुप विफलता को नष्ट करके उसे फिर अन्तर्मुखी बनाकर प्रसन्नता प्रदान कर दिया करता है। वैराग्य रुप हनुमान द्वारा अन्तदृष्टि रुप सजी· बूटी लाने पर साधक रुप राम की प्रसन्नता को रामायण मे भी लिखा है।

चौ०—हरषि राम भेटउ हनुमाना।
अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना॥

वैराग्य रुप हनुमान साधक के हृदय में प्रगट होक· चौथा उसे यह लाभ पहुंचाया करता है कि साधक क

साधना में उपयोगी, विवेक, विचार, संतोष, धीरज, शम दम, प्रेम आदिक सात्विक वृत्तियों को हृदय में और अधिक पुष्ट किया करता है। अर्थात् जब वैराग्य के कारण साधक को भोग दुःख रुप और निस्सार प्रतीत होने लगते हैं तो साधक के मन में आत्मा और अनात्मा का विवेक, आत्म विचार, भोगों की इच्छा का त्याग रुप संतोष, चित की विषयों से उपरामता रुप शम, इन्द्रियों का विषयों से निरोध रूप दमन तथा मन का विक्षेप रहित होकर आत्मा में ही अनुराग रुप प्रेम भी स्वाभाविक ही पुष्ट हो जाया करता है। इसीलिए रामायण में भी गोस्वामी तुलसीदास जी ने वैराग्य रुप हनुमान को विचार आदि विभीषण से दृढ़ता पूर्वक मित्रता करने का वर्णन किया है।

चौ०—राम-राम तेहि सुमरण कीन्हा।
हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा ॥
एहि सन हठि करिहऊं पहिचानी।
साधु ते होय न कारज हानी ॥

वैराग्य रुप हनुमान साधक के हृदय में प्रगट होकर

पाचवाँ उसे यह लाभ पहुंचाया करता है कि साधक की साधना में विघ्न डालने वाली (वृत्ति को विषयाकर बहिर्मुख करने वाली) इन्द्रियों की भोग विलासता रुप अशोक वाटिका को ही हृदय में से उजाड़ दिया करता है। अर्थात् इन्द्रियाँ और मन, भोगों को सुख रुप जान कर ही पञ्च विषयों में आसक्ति रुप भोग विलासता किया करते है। किन्तु वैराग्य भोगों में दुःख रुपता और निस्सारता जना कर उन्हें बन्धनकारी सिद्ध किया करता है। जिसके कारण साधक का मन और इन्द्रि पञ्च विषयों की भोग आसक्ति रुप विलासता को त्याग कर संयमित और हृदय में ही निरुद्ध हो जाया करते हैं। रामायण में अशोक वाटिका के उजाड़ने को इस प्रकार लिखा है।

चौ०—सुनहु मातु मोहिं अतिसय भूखा।
लागि देखि सुन्दर फल रूखा॥
चलेउ नाइ सिरु पैठेऊ बागा।
फल खायसि तरु तोरन लागा॥

नाथ एक आवा कपि भारी।
तेहि अशोक वाटिका उजारी ॥

वैराग्य रुप हसुमान साधक के हृदय में प्रगट होकर छठा उसे यह लाभ पहुंचाया करता है कि साधक की साधना में विघ्न डालने वाले तथा भोग विलासता को ही वढ़ाकर वृत्ति को वहिर्मुख विक्षिप्त करने वाले काम, क्रोध, लोभ, आसक्ति, आशा, तृष्णा, द्वैष आदि आसुरी वृत्तियाँ रुप राक्षसी सेना को विवेक की सहायता से हृदय से शनै-शनै बिल्कुल नष्ट ही कर दिया करता है। अर्थात् जब विदेक पूर्वक भोगों को निस्सार और दुःख रुप समझ कर उनकी इच्छा का त्याग रुप वैराग्य हृदय में प्रगट हो जाता है तो हृदय से भोगों की सुख बुद्धि रूप आसक्ति, भोगों के संग्रह करने की वृत्ति रुप लोभ, अप्राप्त भोगों के प्राप्ति की इच्छा रुप आशा और प्राप्त भोगों के अधिक वढ़ाने की इच्छा रुप तृष्णा, आदि आसुरी वृत्तियों का आप से आप ही अभाव हो जाया करता है। इच्छा के अभाव होने से क्रोध और द्वेष भी हृदय से आपसे आप ही

नष्ट हो जाया करता है । अत: रामायण में हनुमान द्वारा राक्षसों के मारने का इस प्रकार वर्णन आया है ।

चौ०—खाएसि फल अरु विटप उपारे ।
रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे ॥
सब रजनीचर कपि संहारे ।
गए पुकारत कछु अध मारे ॥

दो०—कछु मारेसि, कछु मर्दसि, कछु मिलएसि धूरि ।
कछु पुनि जाइ पुकारे, प्रभु मर्कट बल भूरि ॥

वैराग्य रुप हनुमान साधकके हृदयमें प्रगट होकर सातवां उसे यह लाभ पहुंचाया करता है कि यदि मोह रुप रावण वैराग्य की अनिच्छा रूप पूंछ के आशा अग्नि लगा कर हृदय से उसे नष्ट करना चाहा करता है तो वह अपनी अनिच्छा शक्ति रूप पूंछ से ही मोह को उत्पन्न करने वाली वासनाओं को हृदय से नष्ट करके जला दिया करता

हैं। अर्थात् जब हृदय में वैराग्य रूप हनुमान प्रगट होता है तो भोगों की इच्छा का त्याग होकर हृदय में अनिच्छा शक्ति बढ़ जाती है। यही अनिच्छा ही वैराग्य की पूंछ है और जब वैराग्य के प्रभाव से साधक का हृदय इच्छा रहित ही रहने लगता है तो उसमें से मोह को उत्पन्न करने वाली विषय-वासना आपसे आप ही क्षय हो जाया करती है। यही हनुमान द्वारा लंका दहन है। जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है–

चौ०–जारा नगर निमिष एक माँहीं।
एक विभीषण कर गृह नाहीं॥
उलट पलट लंका सब जारी।
कूदि परा पुनि सिन्धु मझारी॥

वैराग्य रुप हनुमान साधक को आठवाँ यह लाभ पहुंचाया करता है कि वह साधक की वृति को बहिर्मुख न होने देकर उसकी वृति को अभ्यास में ही लगाकर अन्तर्मुख

ही किये रहता है । यदि कभी किसी प्रबल कुसंस्कार वश वृति बहिर्मुख हो भी जाती है तो साधक को वैराग्य के कारण बड़ा ही कष्ट इसलिए होता है कि यह वृति बहिर्मुख होकर आत्म रुप राम को क्यों भूली । अर्थात् वैराग्य के कारण साधक आत्म चिन्तन को ही परम सुख की घड़ी और आत्म को विस्मृत करके विषय चिन्तन को ही परम दुःख की घड़ी समझता है । जिसे रामायण में भी लिखा है ।

चौ०—कह हनुमान विपति प्रभु सोई ।
जब तव सुमरण भजन न होई ।।

वैराग्य रुप हनुमान साधक के हृदय में प्रगट होकर उसे नवाँ यह लाभ पहुंचाता है कि वैराग्य के कारण साधक को साधना करने की बराबर लगन लगी ही रहती है । जिस लगन के कारण वह कुसंग से अलग रहकर आत्मा का ही श्रवण, उसी का मनन और उसी का निदिध्यासन करता ही रहता है और जब तक साधक की वृति पूरी अन्तर्मुख होकर आत्माकार ही होकर आत्मा में ही स्थित नहीं हो

जाती, तब तक वह वैराग्य के कारण आत्म अभ्यास में लगा ही रहता है। इस प्रकार वैराग्य रुप हनुमान साधक को पूर्ण अन्तर्मुख करके उसे स्वरुप में स्थिति कराके ही विश्राम लेता है जिसे लिखा है 'राम काज कीन्हें बिना मोहि कहाँ विश्राम' अतः साधक का बड़ा ही उपकार करने वाला है। वैराग्य रुप हनुमान को रामायण में भी अति उपकारी कहा है।

चौ०–सुनि कपि तोहि समान उपकारी।
नहीं कोऊ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करुं का तोरा।
सन्मुख होइ न सकत मुख मोरा॥
सुनि कपि तोहि उऋण मैं नाहीं।
देखेऊ करि बिचार मन माहीं॥

इस प्रसंग का यह तात्पर्य हुआ कि साधक को अपने कल्याणार्थ आत्मानुभवी सन्तों की सत्संग द्वारा विवेक पूर्वक संसार के भोगों की इच्छा का त्याग रुप वैराग्य को साधना

का अति उपयोगी समझकर हृदय में धारण करना चाहिए। उसके द्वारा साधना की बाधक भोग आसक्ति, ममता, वासना, आदि का क्षय करके, मन की बहिर्मुखता रुप विक्षेप को दूर करे और आत्मा के श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा मन के संशय और विपर्यय दोष को नष्ट करके मन को पूर्ण अन्तर्मुख करके उस स्वरुप में स्थित करे। जब तक स्वरुप में मन की दृढ़ स्थिति न हो जावे तब तक वैराग्य द्वारा आत्म-अभ्यास में मन को लगाए ही रक्खे। जब मन आत्माकार होकर विक्षेप से रहित आत्मा में ही स्थित हो जावेगा। तब परम शान्ति की प्राप्ति होकर कृतकृत्य अवस्था की प्राप्ति हो जावेगी।



दूसरा अध्याय

—सती जी का संसय—

एक समय श्री शिवजी महाराज और भवानी सती जी दोनों एक साथ बन यात्रा कर रहे थे, तो शिव जी ने राम जी को देखकर उन्हें "जय सच्चिदानन्द जगपावन" कहकर सतीजी को यह जनाया कि यह रामजी साक्षात् सच्चिदानन्द परब्रह्म हैं, किन्तु भवानी सतीजी को रामजीके ब्रह्म रुप होने में यह सन्देह हुआ कि यदि यह साक्षात् परब्रह्म ही हैं तो यह देह धारण कर नर रुप में क्यों दिखाई दे रहे हैं। ब्रह्म तो गुणों से अतीत है। जब सती जी श्रीराम जी के ब्रह्म रुप होने में इस प्रकार सन्देह करने लगीं तो शिवजी ने उन्हें जाकर परीक्षा लेने के लिए कहा। परीक्षा करने पर पारवती जी का सन्देह तो दूर हो गया किन्तु दुःख नष्ट न हुआ, फिर पिता प्रजापति के यज्ञ में शिव जी की आज्ञा

के विरुद्ध चली गईं। वहाँ शिव का अनादर देखकर विक्षिप्त हो गईं अतः प्रजापति के यज्ञ में विघ्न डाल दिया और आप भी शरीर को त्याग दिया। इस प्रसंग के द्वारा हम यह समझावेंगे कि आत्मा को श्रवण काल में साधक की वृति का क्या स्वरुप होता है और मनन काल में क्या स्थिति होती है।

अब इस प्रसंग को अध्यात्म रुप में ऐसे समझो कि साधक की विवेक वैराग्य आदि चतुष्टय साधन सम्पन्न मति ही भवानी सतीजी हैं। उसकी आत्म प्राप्ति के लिए ही आत्मा की श्रवण रुप साधना ही वन यात्रा हुआ करती है। उसे बोध रुप शिव जी ही गुरु के रुप में उसकी साधना रुप वन यात्रा का साथी वनकर उसे साधन सम्पन्न जानकर यह आत्म उपदेश किया करते हैं कि यह आत्मा रुप राम कभी नाश नहीं होता अतः सत् रुप अविनाशी है। यह आत्मा रुप राम सारे दृश्य जगत का जानने वाला परम प्रकाशक है। इसमें जानने की शक्ति है। अतः यह चेतन रुप है और यह सब माया के विकारों से रहित है अतः

निर्विकार अपरिणामी और सदा शान्त रुप है। अतः आनन्द स्वरुप है। यह आत्मा रुप राम देश काल वस्तु के परिच्छेद से रहित है अतः व्यापक, नित्य, सर्वरुप है। यह सर्वत्र अकेला ही व्याप्त है अतः यही ब्रह्म है। यह आत्मा रुप राम तीनों गुणों से रहित है। अतः निर्गुण है यह आत्मा रुप राम में अज्ञान और अज्ञान का रचित जगत कल्पित और जड़रुप है। आत्मा रुप राम की सत्ता से ही यह कल्पित शरीर, इन्द्रि, मन, बुद्धि, तीनों गुण और पञ्च तत्व का रचित यावत दृश्य सत्य सा प्रतीत होता है। इस दृश्य की अपनी सत्ता नहीं है। अतः आत्मा रुप राम सदा निष्प्रपंच और शुद्ध है। आत्मा रुप राम उत्पन्न नहीं होता अतः अज है। आत्मा रुप राम सर्वदा चिन्मात्र स्वरुप है अतः निराकार है। आत्मा रुप राम का न आदि है और न अन्त है अतः यह आत्मा रुप राम अनादि और अनन्त है। आत्मा रुप राम न कहीं आता है और न कहीं जाता है अतः अचल है। यह आत्मा रुप राम कभी भी अन्यथा भाव को प्राप्त नहीं होता, अतः सदा एक रस, कूटस्थ, सम रुप है। यह आत्मा शरीर आदि से रहित है अतः

निष्क्रिय है। यह आत्मा रुप राम घटता है न बढ़ता है अतः सदा निर्विकार है। यह आत्मा रुप राम कभी क्षीण नहीं होता अतः परिपूर्ण है। यह आत्मा रुप राम सब कल्पनाओं से अतीत है। अतः निर्विकल्प और मुक्त स्वरुप है। इस आत्मा रुप राम से भिन्न कोई वस्तु नहीं, अतः यह अद्वैत है। यह सर्व दृश्य की प्रतीति और अप्रतीति का आश्रय है, अतः अधिष्ठान रूप है। इस आत्मा रूप राम के जाने बिना दृश्य जगत की प्रतीति हो रही है, किन्तु आत्मा रूप राम के यथार्थ जान लेने पर यह दृश्य भ्रम शान्त हो जाता है। यह आत्म रूप राम ही सदा अपना आप रूप ही है। इस प्रकार बोध रूप शिव ने गुरु रुप में होकर साधन सम्पन्न मति रुप सती जी को आत्मा रुप राम का यथार्थ स्वरुप श्रवण कराया, यही शिव जी राम जी को देखकर जय सच्चिदानन्द कह कर प्रणाम करना है। जिसे रामायण में भी इस प्रकार से लिखा है-

चौ०—राम सच्चिदानन्द दिनेसा।

नहिं तहं मोह निसा लव लेसा॥

सहज प्रकाश रुप भगवाना ।
नहिं तहं पुनि विज्ञान विहाना ।।
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना ।
परमानन्द परेस बखाना ।।
जगत प्रकाश प्रकाशक रामू ।
मायाधीश ज्ञान गुणधामू ।।
सब कर परम प्रकाशक जोई ।
राम अनादि अवध पति सोई ।।
जासु सत्यता ते जड़ माया ।
भास सत्य इव मोह सहाया ।।

दो०–रजत सीप महुं भास जिमि, जथा भानुकर बारि ।
जदपि मृषा तिहुंकाल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि ।।

चौ०––जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई ।
गिरिजा सोई कृपाल रघुराई ।।
सुमिरत जाहि मिटइ अज्ञाना ।
सोई सरवग्य राम भगवाना ।।

इस प्रकार जब बोध रूप शिव गुरू ने साधक की मति रूप सती जी को आत्मा रूप राम को ही ब्रह्म रुप करके श्रवण कराया तो साधक की मति रुप सती जी यह सोचने लगी कि यदि यह आत्मा रुप राम ही शुद्ध, अजन्मा निष्क्रिय, अद्वैत, व्यापक,अनाम, अरूप और ब्रह्म है तो यह देह धर क्यों जन्मता और मरता है और संसार के चक्कर में फंस कर क्यों दुःख का अनुभव करता है। अतः यह शरीर इन्द्रि, मन, बुद्धि वाला आत्मा रूप राम ब्रह्म कैसे हो सकता है। यह ब्रह्म नहीं हो सकता, किन्तु बोध रुप शिव गुरू सत्य कहते हैं। इस प्रकार मति रुप सती जी को आत्मा रूप राम ब्रह्म है या नहीं है इस प्रकार देहाभिमान के कारण संशय उत्पन्न हो गया। जिसे रामायण में भी इस प्रकार लिखा है।

दो०—ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होय नर, जाहि न जानत वेद॥

चौ०—शंभु गिरा पुनि मृषा न होई।
शिव सर्वग्य जान सब कोई॥

अस संशय मन भयो अपारा।
होइ न हृदय प्रबोध प्रचारा॥

जब बोध रुप शिव गुरू ने यह जाना कि साधक की मति रूप भवानी आत्म_उपदेश को सुन कर संशय युक्त हो गई है। अर्थात् आत्मा ब्रह्म रुप ही है, ऐसा मति रुप भवानी को ठीक-ठीक निश्चय नहीं हुआ है। तब बोध रुप शिव गुरु ने साधक की मति रूप भवानी को कहा कि तुम इस सुने हुए उपदेश को अब एकान्त में युक्ति पूर्वक बार बार विचार करके इसकी परीक्षा करो कि आत्मा रुप राम ब्रह्म रुप हैं या नहीं। अर्थात् जव तुम एकान्त में इस सुने हुए आत्म-उपदेश का बारम्बार युक्ति पूर्वक मनन रूप विचार करोगी तो तुम्हारा संशय निवृत हो जावेगा। अतः तुम अब सुने हुए का बारम्बार युक्ति पूर्वक मनन करो। जिसे रामायण में भी इस प्रकार लिखा है।

चौ०–जो तुम्हरे मन अति संदेहू।
तो किन जाइ परीक्षा लेहू॥
जैसे जाइ मोह भ्रम भारी।
करेहु सो जतन विवेक विचारी॥

जब बोध रुप शिव ने साधक की मति रुप भवानी को एकान्त में जाकर सुने हुए को मनन करने की आज्ञा दे दी तो साधक की मति रुप भवानी युक्ति पूर्वक आत्मा रुप रामके सुने हुए स्वरुप को बारबार इस प्रकार विचार करके अपनी वृति को अन्तर्मुख करने लगी कि यदि सच्चिदानन्द आत्मा रुप राम से ब्रह्म को भिन्न मानेंगे तो वह अनात्मा असत जड़ और दुःख रुप ही सिद्ध होगा। सो ब्रह्म असत जड़ दुःख रुप तो कभी हो ही नहीं सकता। दूसरे यदि ब्रह्म से आत्मा को भिन्न मानेंगे तो भी आत्मा को सर्व व्यापक न मान कर परिच्छिन्न मानना पड़ेगा। जो परिच्छिन्न वस्तु होती है वह उत्पन्न और नाश स्वभाव वाली होती है। परन्तु आत्मा रुप राम नाशवान मानना भी ठीक नहीं तब तो आत्मा रुप राम ब्रह्म से भिन्न नहीं हो सकती। अतः आत्मा रुप राम ब्रह्म रुप ही है। जब साधक की मति रुप भवानी को बारबार विचार द्वारा यह निश्चय हो गया कि आत्मा रुप राम ब्रह्म रुप ही है। तो फिर इसका आत्मा रुप राम ब्रह्म है या नहीं। यह संशय निवृत हो गया। जब साधक की मति रुप सती जी को मनन द्वारा यह निश्चय हो गया कि आत्मा ही सर्व व्यापक और ब्रह्म है तब वह अपने

निश्चय के प्रभाव से चराचर जीवों के अनेक शरीरों में आत्मा रुप राम का भिन्न-भिन्न रुप न देखकर एक ही सच्चिदानन्द रुप देखने लगी। जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है।

चौ०—जीव चराचर जो संसारा।
देखे सकल अनेक प्रकारा॥
पूजहिं प्रभुहि देव बहु वेषा।
राम रुप दूसर नहिं देखा॥

इस प्रकार साधक की मति रुप भवानी को मनन के प्रभाव से संशय निबृत होकर यह निश्चय तो हो गया कि आत्मा रुप राम ही ब्रह्म है किन्तु फिर भी देहाध्यास तथा दृश्य की आस्था रुप विपर्य भाव के शेष रह जाने के कारण साधक की मति रुप भवानी का विक्षेप रुप दु:ख का पूरा-पूरा अभाव न हो सका। अतः जब उसने देहाभिमान रुप दक्ष प्रजापति द्वारा इन्द्रिय रुप अग्नि में विषयों की आहुति देना रुप यज्ञ को करते सुना तो वह बोध रुप शिव गुरु की आज्ञा का उलंघन करके (बोध

रुप शिव से विमुख होकर) देहाभिमान रुप प्रजापति के यज्ञ में चली गई तो देहाभिमान रुप प्रजापति के इन्द्रियों की विषयाशंक्ति रुप यज्ञ में उसने बोध रुप शिव की विमुखता रुप तिरस्कार को देखा। जिसके कारण वह वड़ी विक्षिप्त हो गई और देहाभिमान रुप प्रज्ञापति के विषयासक्ति रुप यज्ञ में ही प्रवेश करके उसने अपने विचार मय शरीर को त्याग दिया। इसका तात्पर्य यह है कि जब मनन करने पर साधक की भी मति रुप भवानी का देहाभिमान तथा दृश्य की आस्था शेष रह जाती है तो उसे देहाभिमान के कारण इन्द्रिय और विषय रुप दृश्य की सत्ता प्रतीत होती रहती है, जिसके कारण वह इन्द्रियों की विषय-वासनाओं से प्रभावित होकर वहिर्मुख विषयाकार हो जाया करती है। जब देहाभिमान रुप प्रजापति के प्रभाव से वह विपयाकार हो जाती है तो वह वोध से विमुख हो जाने के कारण विक्षिप्त हो जाती है। अत: वह विचार से रहित होकर विषयों के प्रभाव में वह कर शिथिल हो जाती है। यही भवानी को शिव की आज़ा के विरुद्ध प्रज़ापति के यज्ञ में जाना है और वहाँ शिव का

तिरस्कार देख कर यज्ञ में शरीर का त्यागना है। जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है।

चौ०—पूछेउ तब शिव कहेऊ बखानी।
पिता यज्ञ सुनि कछु हरखानी।।

दो०—पिता भवन उत्सव परम, जौं प्रभु आयसु होई।
तौ मैं ज़ाऊं कृपायतन, सादर देखन सोई।।

चौ०—कह प्रभु जाहु जो बिनहि बोलाए।
नहिं भल बात हमारे भाए।।

दो०—कर देखा हर जतन वहु, रहइ न दच्छ कुमारि।
दिए मुख्य गन संग तब, विदा कीन्ह त्रिपुरारि।।

चौ०—सती जाइ देखेउ तब जाना।
कतहुं न दीख शंभु कर भागा।।

दो०—शिव अपमान न जाइ सहि हृदय न होइ प्रबोध।
सकल सभहि हठि हटकि तब बोली बचन सक्रोध।।

चौ०—तजिहउ तुरत देह तेहि हेतु।
उर धरि चन्द्र मौलि वृष केतु।।

अस कहि जोग अगिन तनु जारा।
भयउ सकल मख हा हा कारा॥

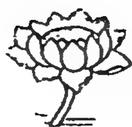
इस प्रकार साधक की मति रूप सती जी देहाभिमान के प्रभाव में आकर बोध रूप शिव से विमुख विषयाकार हो जाने के कारण विक्षिप्त होकर साधना से शिथिल हो गई।

इस प्रसंग का यह तात्पर्य हुआ कि साधक की चतुष्टय साधन सम्पन्न मति जब आत्मानुभवी गुरु से आत्मा के स्वरुप का श्रद्धा पूर्वक श्रवण करती है, तो श्रवण काल में उसमें 'आत्मा ब्रह्म रुप है अथवा नहीं' यह संशय बना रहता है किन्तु आत्मा के स्वरुप को श्रवण करके जब एकाग्र रहकर भीतर ही अभेद की साधक और भेद की बाधक रुप युक्ति पूर्वक बारम्बार विचार करती है। तो उसका संशय नष्ट होकर यह निश्चय हो जाया करता है कि आत्मा ब्रह्म रुप ही है, परन्तु मनन करने पर भी साधक की मति में देहाभिमान और दृश्य की सत्ता रुप विपर्य अध्यास शेष रह जाता है। जिसके प्रभाव में आकर

मति स्वरुप से विमुख होकर विक्षिप्त हो जाया करती है। और बहिर्मुख होकर साधन से शिथिल हो जाया करती है अतः मनन के पश्चात् भी देहाभिमान और दृश्य की आस्था रुप विपर्य अध्यास की निवृत्ति के लिए निदिध्यासन करना अति आवश्यक है, जिसे अगले अध्याय में निरुपण करेंगे। साधक के श्रवण काल को ज्ञान की शुभेच्छा रुप प्रथम भूमिका और मनन को सुविचार रुप द्वितीय भूमिका कहते हैं।

श्रवण परायण साधक की वृत्ति की अवस्था पानी में डुबे हुए पत्थर के समान कही जाती है क्योंकि जैसे पत्थर जब तक पानी में डूबा रहता है तब तक गीला रहता है किन्तु बाहर निकालते ही सूख जाता है। उसी प्रकार केवल श्रवण प्रायण साधक की वृत्ति भी जब तक सतसंग रुपी जल में रहती है तब तक तो आत्माकार रहती है। किन्तु सत्संग से उठते ही वृत्ति बहिर्मुख विषयाकार होकर विक्षिप्त हो जाया करती है और मनन परायण साधक की वृत्ति की अवस्था पानी में डूबे कपड़े के समान कही जाती

है क्योंकि जैसे पानी में डुबाया हुआ कपड़ा पानी में भी भीगा रहता है और बाद में भी कुछ काल भीगा रहता है, किन्तु फिर सूख जाता है। उसी प्रकार मनन परायण साधक की वृति भी सत्संग रूप जल में आत्माकार रहती है और बाद में भी मनन के प्रभाव से कुछ काल आत्माकार ही रहता है। किन्तु फिर व्योहार में लग जाने पर कुछ काल बाद बहिर्मुख विषयाकार होकर विक्षिप्त हो जाया करती है। इस प्रकार मनन की अवस्था भी साधक के लिए विक्षेपकारी होने से संतोषजनक नहीं। अतः उसे वृति के विक्षेप को बिल्कुल ही समाप्त करने के लिए मनन के बाद निदिध्यासन का अभ्यास करना चाहिए।



तीसरा अध्याय

श्री पारवती-तप

सतीजी ने गिरिराज में पुनः जन्म लिया अतः पारवती नाम हुआ। जब पारवती युवा हो गई तो नारद जी गिरि गृह में आये और उन्होंने कहा कि यदि पारवती तप करे तो इसे शिव रुप वर की प्राप्ति हो जाये। ऐसा सुनकर पारवती ज़ी ने बन में जाकर शिव की प्राप्ति के लिए उग्र तप किया। जब उसका तप पूरा हो गया तो ब्रह्मा ने उन्हें प्रगट होकर शिवरुप वर प्राप्ति का विश्वास दिलाया। उधर शिव जी को मालूम हुआ तो उसने सप्तऋषियों को पारवती के प्रेम की परीक्षा लेने भेजा। सप्तऋषियों ने आकर पारवती जी को शिव के प्रति घृणा करके शिव से उसे हटाना चाहा किन्तु वह उनकी चाल में न आई। तब सप्तऋषि पारवती को शीश नवाकर शिव जी को सब समाचार ज़ा सुनाये। शिव जी प्रसन्न होकर

पारवती जी से विवाह कर लिए। जिसके फलस्वरुप षट्वदन का जन्म हुआ और उसने तारकसुर को नष्ट करके अमन चैन कर दिया। इस प्रकार पारवती ज़ी का तप सफलीभूत हो गया। इस प्रसंग के द्वारा हम यह समझावेंगे कि निदिध्यासन प्रायण साधक की आंतिरिक स्थिति कैसी होती है तथा निदिध्यासन द्वारा साधक देहाभिमान तथा दृश्य की सत्ता रुप विपर्च अध्यास को नष्ट करके विक्षेप का अन्त करके कैसे स्वरुप में स्थित हो जाया करता है ?

अव इस प्रसंग को अध्यात्म रुप में यों समझो कि जव मनन परायण साधक की मति रुप सती जी देहाभिमान रुप प्रजापति के प्रभाव से विक्षिप्त होकर साधन से शिथिल हो गई तो उस के अभ्यास के संस्कार फिर उदय हुए तव उसने फिर से अन्त:करण रुप गिरि में जन्म लिया अर्थात् शुभ संस्कारों के उदय होने पर मति रुप सती जी का विक्षेप समाप्त हो गया। अत: फिर से अन्त:करण में उत्पन्न होकर वोध रुप शिव से अनुराग करने लगी। ऐसी मति की अवस्था को देखकर साधक को आत्मानुभवी सन्त

रुप नारद जी मार्ग प्रदर्शक के रुप में आ प्राप्त हुए और उन्होंने कहा कि यदि यह मति रुप पारवती विक्षेप रुप क्लेश का पूरा-पूरा अभाव करना चाहती है तो यह बोध रुप शिव जी निज आत्मा के रुप में साक्षात् उपलब्धि के लिए निदिध्यासन रुप तप करे। बोध रुप शिव की निज आत्माके रुप में साक्षात् उपलब्धि के लिए निदिध्यासन रुप तप करे। बोध रुप शिव की निज आत्म रुप में साक्षात् उपलब्ध हुए विना मोक्ष रुप कल्याण न होगा और न विक्षेप का ही नाश होगा। यही सती जी का फिर से पारवती रुप में गिरि में जन्म लेना है और नारद द्वारा उसे शिव रुप वर की प्राप्ति के लिये उपदेश देना है जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है—

चौ०—जब से उमा सैल गृह जाई।
सकल सिद्धि सम्पति तहं छाई॥
सोह सैल गिरिजा गृह आये।
जिमि जनु राम भगति के पाए॥
नारद समाचार सब पाए।
कौतुक ही गिरि गेह सिधाए॥
जो तप करै कुमारि तुम्हारी।
भावि मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥

शंभु सहज समरथ भगवाना।
एहि विवाह सब बिधि कल्याणा।।
करे जो तप जेहि मिले महेसू।
आन उपाय न मिटिहि कलेसू।।

जब सन्त रुप नारद ने साधक की मति रूप पारवती को यह उपदेश दिया कि कल्याणार्थं बोध रुप शिव को निज़ आत्मा के रुप में साक्षात् उपलब्ध करने के लिए हृदय रुप बन में ही बहिर्मुख अनात्माकार वृति के तिरस्कार पूर्वक (निरन्तर अन्तर्मुख आत्माकार वृति का अभ्यास रुप) निदिध्यासन रुप तप करो तब साधक की मति रुप पारवती ने हृदय रूप बन में ही आत्मा का ही वारम्बार विचार करके निदिध्यासन उग्र रूप तप करने लगी। उस आत्माभ्यास से मति रूप पारवती का बोध रूप शिव में नित्य नवीन अनुराग बढ़ने लगा और शरीर और दृश्य से अनुराग समाप्त होने लगा। आत्माभ्यास में सबसे पहले सहस संवत अर्थात् कुछ काल तो मति रूप पारवती ने पूर्व सञ्चित कुसंस्कार रूप मूल-फल ही खाकर

नष्ट कर दिए ! क्योंकि यदि वह अभ्यास द्वारा नष्ट न किये जाते तो वह साधना में विक्षेप रुप फल देकर दुःख के ही मूल सिद्ध होते, अतः कुसंस्कारों का नष्ट करना ही मूल फल का खाना है । फिर सत वर्ष अर्थात् कुछ काल दृश्य पदार्थों की आसक्ति रुप साग को खाकर समाप्त किया । दृश्य पदार्थ की आसक्ति साग रुप इसलिये है कि मति रुप पारवती उसे अभ्यास द्वारा न खाती तो वह हरी भरी होकर आगे जन्म का हेतु बन जाती । अतः मति द्वारा दृश्य पदार्थों की आसक्ति का नष्ट करना ही साग का खाना है, फिर कुछ दिन भोग आसक्ति रुप साग को हरा भरा करने वाली वासना रुप वारि को खाकर समाप्त किया, क्योंकि वासना ही वह जल है कि जिससे आसक्ति रुप साग हरा भरा होकर जन्म का हेतु हुआ करता है । अतः मति का अभ्यास द्वारा वासना का खा जाना ही वारि का भोजन करना है । जब मति रुप पारवती वासना रुप वारि को भी खा गई तो फिर वासना के अभाव हो जाने पर कुछ काल मति रुप पारवती ने विषयाकार वृत्ति से बिल्कुल शून्य होकर उपवास किया । मति का विषय

चिन्तन से शून्य हो जाना ही उपवास करना है। इस प्रकार अभ्यास द्वारा मति जब निर्वासनिक होकर अन्तर्मुख हो गई तब उसने तीन सहस्त्र अर्थात् कुछ काल " मैं देह हूं कर्त्ता भोक्ता हूं, इस देहाभिमान रुप सूखी बेलपाती को ही खाकर समाप्त किया अर्थात् देहाभिमान तथा कर्त्ता भोक्ता बुद्धि जो पहले ही विचार द्वारा क्षीण करके सुखा दिया गया था उसको निदिध्यासन द्वारा मति रुप पारवती ने खा कर समाप्त कर दिया। इस प्रकार मति रुप पारवती जब देहाभिमान और दृश्य की आस्था रुप सूखी पाती को भी खा कर त्याग दिया। तब वह बाह्य विपर्यय अभ्यास रुप विक्षेप से निवृत होकर अन्तर्मुख स्वरुपकार ही हो गई और मन रुप ब्रह्मा ने पूर्ण शुद्धि के रुप में प्रगट होकर यह विश्वास दिला दिया कि अब बोध रुप शिव की साक्षात् उपलब्धि अवश्य ही हो जावेगी और अब कोई भी विक्षेप, बन्धन न रहेगा। यही पारवती ने तप किया जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है।

चौ०—उर धरि उमा प्रानपति चरना।

जाइ बिपिन लागी तप करना॥

नित नव चरन उपज अनुरागा ।
बिसरी देह तपहि मनु लागा ॥
संवत सहस मूल फल खाए ।
सागु खाइ सत बरष गवाएं ॥
कछु दिन भोजन बारि बतासा ।
किए कठिन कछु दिन उपवासा ॥
बेलपाती महि परई सुखाई ।
तीन सहस संवत सोइ खाई ॥
पुनि परिहरे सुखानेउ परना ।
उमहिं नाम तब भयो अपरना ।
देखि उमहिं तप खीन शरीरा ।
ब्रह्म गिरा भै गगन गंभीरा ॥

दो०—भयऊ मनोरथ सुफल तव, सुनु गिरिराज कुमारि ।
परिहरु दुसह कलेस सब, अब मिलिहहिं त्रिपुरारि ॥

जब साधक को मति रुप पारवती निदिध्यासन रुप तप द्वारा देहाभिमान और दृश्य का अनुराग त्याग कर बोध रुप शिव में ही अनन्य अनुरागी होकर अन्तर्मुख हो

गई। तो उस समय पञ्चज्ञान इन्द्रि, प्राण तथा बहिर्मुख मन यह सात ही भेदवादी सगुण उपासक रुप सप्तऋषि बन कर मति की बोध रुप शिव के प्रति अनन्य प्रेम की परीक्षा करने आये। अर्थात् उस बोध रुप शिव से चलायमान करने आये। उन्होंने मति रुप पारवती को कहा कि तुमने अभेदवादी सन्त रुप नारद के बहकावे में आकर अपना कल्याण का मार्ग नष्ट कर दिया। अभेद-वादी नारद ने भी किसी को मुक्ति होने दिया है। वह तो सबको अपने समान ही करके सब व्यौहार से उदासीन बनाकर उसका घर ही उजाड़ देते हैं। उनके वचन में तुम विश्वास करके ऐसे बोध रुप शिव को प्राप्त करना चाह रहा हो जो सब क्रियाओं से रहित अक्रिय और उदासीन की न्याई स्थित है। वह बोध रूप शिव हर (माया के तीनों गुणों) से रहित है अतः निर्गुण है और मान अपमान आदि द्वन्दों से सुखी दुःखी नहीं होकर सम रहता है अतः वह निर्लज्ज है। सब प्रकार के आकारों से रहित निराकार है। जिसे कोई देख ही नहीं सकता अतः कुवेष को धारण किये है और सारे दृश्य को अपनी ज्ञान शक्ति

से भस्म कर देता है अतः कपाली है। वह किसी माता-पिता आदि से जन्मा नहीं, अतः बिना ही कुल परिवार का है अतः अकुल है। उसने अपने रहने का कोई भी घर नहीं बनाया। वह सदा निराधार ही रहता है अतः अगेह है और वह शरीर, इन्द्रि और मन आदि से रहित है और भ्रम विकार से रहित है अतः दिगम्बर है। संसय रूप सर्प को अपने बस किए है अतः व्याली है। ऐसे बोध रूप शिव की प्राप्ति से तुम्हे क्या सुख हो सकता है। अतः तुम अभेदवादी कपटी नारद के उपदेश को त्याग दो और अपने से भिन्न सर्वगुणों से युक्त नाम रूप वाले ब्रह्म का ध्यान करो। जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है—

चौ०—बोले ऋषि सुन सैल कुमारी।
करहु कवन कारन तप भारी॥
केहि अवराधहु का तुम चहहू।
हम सन सत्य मरम किन कहहू॥

पारवती बोलीं—

चौ०—देखेहु मुनि अविवेक हमारा।
चाहिअ सदा शिवहिं भरतारा॥

ऋषि बोले—

चौ०—नारद सिख जो सुनहिं नरनारी।
अवसि होहिं तज भवन भिखारी॥
तेहि के वचन मान विश्वासा।
तुम चाहहु पति सहज उदासा॥
निर्गुण निर्लज्ज कुवेष कपाली।
अकुल अगेह दिगंबर व्याली॥
कहहु कवन सुख अस बरू पाए।
भल भूलिहू ठग के बौराए॥
अजहूं मानहु कहा हमारा।
हम तुम कहुं बरू नीक विचारा॥
दूषन रहित सकल गुण रासी।
श्री पति पुर वैकुण्ठ निवासी॥

जब बोध रुप शिव में ही अनन्यानुरागी मति रूप पारवती को भेदवादि आकार को ही विषय करने वाली बहिर्मुख मन, प्राण और पञ्चज्ञान इन्द्रिय रूप सप्त ऋषियों में अपना भेद उत्पन्न करने वाले वचनों द्वारा चलायमान करना चाहा अर्थात् उसे अन्तर्मुख से बहिर्मुख करना चाहा तो अनन्यानुरागी अन्तर्मुख हुई, मति रुप पारवती ने कहा——

चौ०—सत्य कहेहु गिरि भव तनु एहा।
हठ न छूट छूटे बरु देहा॥
जन्म कोटि लगि रगर हमारी।
बरऊं शंभु न त रहहुं कुआरी॥
नारद वचन न मैं परिहरऊं।
वसउ भवन उजरउं नहिं डरऊं॥
गुरु के वचन प्रतीति न जेहि।
सपनेहुं सुगम न सुख सिधि तेहि॥
तजऊं न नारद कर उपदेसू।
आप कहहिं सत बार महेसू॥

अर्थात् बोध रुप शिव में अनन्य अनुरागी मति रुप पारवती सप्त इन्द्रिय रुप सप्त ऋषियों द्वारा प्रभावित

होकर बहिर्मुख न हो सकी। वह बोध रुप शिव में ही अनन्यानुरागी हुई २ अन्तर्मुखी ही बनी रही फिर सप्त ऋषियों को पता चला कि बोध रुप शिव को भस्म कर दिया और अपने अकाम अकर्त्ता अभोक्ता रुप ही में स्थित हैं तब फिर सप्त इन्द्रिय रुप सप्त ऋषियों ने अनन्यानुरागी मति रुप पारवती को इस प्रकार कह कर चलायमान करना चाहा कि—

दो०—कहा हमार न सुनेहु तव, नारद के उपदेश।
अव भा झूठ तुम्हार पन, जारेऊ कामु महेस॥

तो साधक की मति रुप पारवती ने कहा कि इन्द्रिय रुप सप्त-ऋषियों तुम यह समझते हो कि बोध रुप शिव काम भस्म करके अव अकाम निर्विकार हुआ है तो क्या अव तक वोध रुप शिव विकार सहित थे। ऐसा तुम्हारा कहना ही महा अज्ञान है। वोध-रुप शिव तो सदा से ही अकर्त्ता अभोक्ता अज, निर्विकार अकाम, पूर्ण, शुद्ध, परमानन्द रूप तथा कल्याण स्वरुप हैं। वोध रूप शिव तक वासना ही नहीं पहुंच सकती। क्या कभी अग्नि के पास हिम जा सकता है। यदि जावेगा तो वह स्वाभाविक ही नाश हो जावेगा। अतः बोध रूप शिव सदा ही शुद्ध है जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है—

चौ०—तुम्हरे जान काम अब ज़ारा।
अब लगि शंभु रहे सविकारा।।
तुम जो कहा हर जारेउ मारा।
सोई अति बड़ अविवेक तुम्हारा।।
हमरे जान सदा शिव योगी।
अज अनवद्य अकाम अभोगी।
तात अनल कर सहज स्वभाऊ।
हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ।।
गए समीप सो अवसि नसाई।
असि मन्मथ महेश की नाई।।

जब साधक की बोध में अनन्यानुरागी मति रुप पारवती प्रकार भी भेदभावी सप्त ऋषियों से विचलित होकर बहिर्मुख न हुई तो वह सब हारकर वापस लौट गए अर्थात् इन्द्रिय, प्राण और बहिर्मुख मन रूप सप्त इन्द्रियाँ रूप सब ऋषि निदिध्यान प्राण अन्तर्मुख मति को किसी भी प्रकार विक्षिप्त नहीं कर सकती। ऐसी बोध में ही अनन्यानुरागी अन्तर्मुखी मति रुप पारवती बोध रूप शिव के साथ मिलकर वही रुप हो गई तो यही पारवती और शिव का विवाह होना है। जब इस प्रकार निद्धियासन रुप तप के प्रभाव से अन्तर्मुख मति रुप

पारवती बोंध रुप शिव के साथ वोध रुप ही होकर परमानन्दमय विहार करने लगी, जिससे आत्मानुभव रूप कार्तिक का उद्भव हो गया । जिसने देहाभिमान तथा दृश्य की सत्ता रुप विपर्यय अध्यास रुप तारक असुर को नष्ट कर दिया और फिर साधक की स्वरूप में स्थिति होकर कृतकृत्य हो गया । जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है ।

चौ०—हरि गिरिजा कर भयऊ विवाहू ।
सकल भुवन भरि रहा उछाहू ॥
हरि गिरिजा विहार नित नयऊ ।
एहि विधि विपुल काल चलि गयऊ ॥
तव जन्मेउ षट वदन कुमारा ।
तारकु असुर समर जेहि मारा ॥

इस प्रसंग का यह तात्पर्य हुआ कि साधक को श्रवण मनन के अन्तर विजातीय वृति के तिरस्कार पूर्वक सजातीय आत्माकार वृति के अखण्ड प्रवाह रुप निदिध्यासन को भी अवश्य करना चाहिए । जिससे कि साधक का देहाभिमान तथा दृश्य की सत्तारुप विपरीत भावना रूप अध्यास की निवृति होकर साधक का बाह्य विक्षेप सदा

के लिए नाश हो जाता है और साधक की वृति निर्विघ्न आत्माकार होकर आत्मा में ही स्थित हो जाती है। निदिध्यासन प्रयण साधक की तनु मानसा नाम ज्ञान की तीसरी भूमिका कही जाती है जिसमें कि मन अन्तर्मुख होकर तनु अर्थात् सूक्ष्म आत्माकार हो जाता है। निदिध्यासन परायण साधक की वृति की स्थिति पानी में डाले नमक के समान कही जाती है, अर्थात् जैसे पानी में डाला नमक पानी में पिघल कर पानी ही रुप हो जाता है उसका भिन्न रुप नहीं रह जाता। उसी प्रकार निदिध्यासन अवस्था में साधक की वृति आत्मा में ही मिलकर आत्माकार ही हो जाती है। उसका भिन्न रुप नहीं रहता। अतः साधक को एक अनुभव सत्ता का ही निरन्तर स्वाभाविक अनुभव होने लगता है और द्वैत का सर्वथा अभाव होकर कृतकृत्य अवस्था की प्राप्ति हो जाती है।



चौथा अध्याय

नारद-अभिमान

एक समय श्री नारद जी एक पवित्र आश्रम में बैठ कर राम का ध्यान करने लगे। उनकी बुद्धि राम में लग कर समाधीस्थ हो गई, तब देवताओं ने [जिन्हें विषय भोग ही प्रिय लगते हैं, राम का अनुराग अच्छा नहीं लगता] कामदेव को नारद जी की समाधि में विघ्न डालने भेजा। उसने अपना सब बल नारद की समाधीभंग में लगा दिया, किन्तु नारद के मन पर उसका तनिक भी प्रभाव न पड़ा। तब कामदेव तो निराश होकर लौट गया, किन्तु उसका नारद जी को 'मैंने कामदेव को जीत लिया' ऐसा अभिमान हो गया। अभिमान सहित नारद जी शिव जी के पास पहुंचे और वहाँ उन्होंने अभिमान प्रगट किया कि मैंने कामदेव को जीत लिया। तब शिव जी ने उन्हें समझाया और कहा कि ऐसा अभिमान और कहीं न करना, किन्तु नारद जी फिर विष्णु जी के पास गये और फिर वहाँ पर भी वही अभिमान प्रगट किया 'कि मैंने काम को जीत लिया' तो उस समय विष्णु जी को उन पर

या आ गई, और उन्होंने अभिमान को उनकी साधना में बाधक जानकर उसे युक्ति पूर्वक नष्ट कर दिया। जिससे कि नारद जी निर्भिमान होकर परम शान्त हो गये। इस प्रसंग के द्वारा हम यह समझावेंगे कि उपासक भी उपासना के प्रभाव से आसुरी विकारों को जीत लिया करता है फिर भी उसे ज्ञान प्राप्ति द्वारा मिथ्या कर्ता भोक्ता अभिमान को त्यागने पर ही पूर्ण शान्ति की प्राप्ति होती है। कर्त्ता अभिमान रहते शान्ति नहीं प्राप्त होती।

अब इस प्रसंग को अध्यात्म रुप में ऐसे समझो कि जब उपासक रुप नारद के हृदय में शुभ संस्कार वश सत्व गुण की वृद्धि हो जाती है तो उस सत्व गुण युक्त हृदय रुप पावन आश्रम में ही उसका मन, आत्मा रुप में ही अनन्य अनुरागी बनाकर उसमें एकाग्र हो जाया करता है। अर्थात् उपासना के प्रभाव से उसका मन बहिर्मुखता रुप दोष रहित निर्मल एकाग्र होकर अन्तर्मुख हो जाया करता है। यही नारद का पावन आश्रम को देख कर उसमें सहज ही समाधी लग जाना है और बहिर्मुखता रुप श्राप की गति का बाधक हो जाना है जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है।

चौ०–आश्रम परम पुनीत सुहावा।
देखि देव ऋषि मन अति भावा॥
सुमिरत हरि हि श्राप गति बाधी।
सहज विमल मन लागि समाधी॥

जब उपासना के प्रभाव से उपासक रुप नारद का मन अन्तर्मुख होकर, आत्म रुप हरि में ही प्रीति कर लिया करता है तो यह इन्द्रिय रुप देवताओं को अच्छा नहीं लगता, क्योंकि इन्द्रिय रुप सुरों को तो विषय-भोग ही प्रिय लगते हैं। अतः उन्हें तो मन का विषयों में आसक्ति होना ही अच्छा लगता है। राम में प्रीति करना अच्छा नहीं लगता। तब वह इन्द्रिय रुप सुर तो मन में विषय-वासना रुप काम को ही प्रगट करके उसे बहिर्मुख कर देना चाहा करते हैं। जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है–

चौ०–इन्द्रि द्वार झरोखा नाना।
तहं तहं सुर बैठे कर थाना॥
इन्द्रि सुरन्ह न ज्ञान सुहाई।
विषय-भोग पर प्रीति सदाई॥
आवत देखहिं विषय बयारी।
ते हठि देहिं कपाट उघारी॥

किन्तु उपासक रुप नारद के उपासना द्वारा आत्मा रुप हरि में एकाग्र मन पर इन्द्रिय रुप सुरों द्वारा काम वासना का प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात् उपासक रुप नारद के मन में एकाग्र अन्तर्मुख हो जाने के कारण काम वासना उत्पन्न होकर विक्षेप नहीं डाल सकती। यही नारद के पास कामदेव का जाकर हार मान जाना है जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है।

चौ०—तेहि आश्रम मदन जब गयऊ।
निज माया बसन्त निर्मयऊ॥
काम कला कछु मुनिहि न व्यापी।
निज भय डरेऊ मनोभव पापी॥
भयो न नारद मन कछु रोषा।
कहि प्रिय वचन काम परितोषा॥
नाइ चरन सिर आयसु पाई।
गयउ मदन तब सहित सहाई॥

इस प्रकार उपासक रुप नारद उपासना के द्वारा ही अन्तर्मुख होकर काम आदि आसुरी विकारों को विजय तो कर लिया करता है किन्तु आत्मा के अकर्त्ता अभोक्ता रुप में अन्तःकरण से मिल करके यथार्थ ज्ञान नहीं होने से वह अन्तःकरण के धर्मों का ही आत्मा में ही अध्यास

किये रहता है। अतः वह मैंने कामादि आसुरी वृतियों को जीत लिया' इस प्रकार का आत्मा में अभिमान करने लगता है। यद्यपि आसुरी वृत्तियों का जीतना यह शुद्ध अन्त:करण का ही धर्म है अकर्ता आत्मा को नहीं किन्तु उपासक रुप नारद को आत्मा और अन्त:करण के स्वरुप का ठीक-ठीक ज्ञान न होने के कारण वह अन्त:करण के काम आदि जीतने रुप धर्म का आत्मा में ही (मैंने काम आदि को जीत लिया) इस प्रकार का अहंकार किया करता है। ऐसी अवस्था में यदि उपासक रुप नारद की किसी बोध निष्ठ शिव से भेंट हो जाया करती है और उसके सामने जब उपासक रुप नारद 'मैंने काम को जीत लिया' इस प्रकार अहंकार प्रगट करता है तो वह बोधनिष्ठ सन्त रुप शिव उसे इस प्रकार हित का उपदेश किया करता है कि कामादि वृत्तियों का जीतना या न जीतना यह सब अन्त:करण का ही धर्म है। क्योंकि पुण्य पाप का कर्त्ता और सुख दुख का भोक्ता रुप धर्म अन्त:करण का ही है। अन्त:करण के साक्षी तुझ आत्मा का नहीं। तू आत्मा तो केवल द्रष्टा मात्र है तू किसी भी क्रिया का कर्त्ता नहीं अतः इस अन्त:करण के धर्म को अंगीकार करके अकर्ता आत्मा में ऐसा अभिमान मत कर कि मैंने कामादि

आसुरी वृत्तियों को जीत लिया है। अबसे भूल कर भी इस अनात्मा अन्तःकरण के धर्मों का आत्मा में अभिमान करके किसी भी ज्ञानी सन्त रुप विष्णु के सामने ऐसा मत कहना कि मैंने कामादि वृत्तियों को जीत लिया है। यदि वह कह भी तो तू ऐसे ही कहना कि मैं तो अकर्त्ता अभोक्ता रुप अचल हूं। ऐसे अभिमान रहित वचन ही बोलना। इस प्रकार के बोधनिष्ठ रुप शिव के हित वचनों में यदि उपासक रुप नारद विश्वास नहीं करता तो वह उसे अच्छे नहीं लगते और वह अहंकार रहित भी नहीं हो पाता। यही नारद का काम जीतने का अभिमान करके शिव के सामने कहना है और शिव द्वारा समझाकर इसे दूर करने का प्रयत्न करना है जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है।

चौ०—तब नारद गवने शिव पाहीं।
जिता काम अहमिति मन माहीं॥
मार चरित शंकरहि सुनाए।
अति प्रिय जानि महेश सिखाए॥
बार बार बिनवऊं मुनि तोही।
जिमि यह कथा सुनायहु मोही॥

तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूं।
चलेहुं प्रसंग दुराएहु तबहूं॥
शंभु वचन मुनि मन नहिं भाए।
तब बिरंचि के लोक सिधाए॥

उपासक रूप नारद बोध निष्ठ शिव के उपदेश से विश्वास के अभाव में तथा दृढ़ आग्रहवश आत्मा के यथार्थ अक्रय स्वरुप को नहीं जान पाया करता है तो वह आत्मानुभवी विष्णु जी के पास जाकर भी इसी मिथ्या अभिमान को प्रगट किया करता है कि मैंने कामादि को जीत लिया। वह आत्मनिष्ठ विष्णुजी यह विचार किया करते हैं कि यह उपासना द्वारा तो अपना चित विक्षेप नष्ट कर चुका है। इसे केवल स्वरुप का ही आवरण होने के कारण यह अहंकार है। अतः यह कृत उपासक होने के कारण ज्ञान का उत्तम अधिकारी है। यह हमारी शरण आया है अतः युक्ति द्वारा इसका अहंकार नष्ट करके इसे स्वरुप की प्राप्ति करानी चाहिये। जब इस प्रकार की दया धारण कर विष्णु जी उसे इस प्रकार समझाया करते हैं कि हे मुनि यह अहंकार तो तुम्हें स्वरुप के अज्ञान से ही है क्योंकि तू आत्मा तो सदा ही अक्रिय, अचल, दृष्टामात्र है और कामादि को जीतना शुद्ध अन्तःकरण का धर्म है

तुझमें अन्तःकरण और उसके सब धर्म कल्पनामात्र हैं। अतः मिथ्या है। तू अधिष्ठान आत्मा तो सत् अविनाशी है। न तुझमें पहिले ही विकार था जो अब तू विकार को जीत कर निर्विकार हुआ है। तू तो सदा से ही शुद्ध और निर्विकार है फिर तू कैसे अहंकार करता है कि मैंने कामादि को जीत लिया। तू तो सदा से ही अन्तःकरण और उसके धर्मों से रहित असंग है। यह तो गुण का कार्य है पर तू तो गुणों से अतीत निर्गुण है और सदा ब्रह्मरुप नित्य मुक्त स्वरुप है तुझे यह अन्तःकरण के धर्म छू ही कहाँ सकते हैं। तू तो कूटस्थ निर्विकार अचल और शुद्ध है फिर तू यह कैसे अहंकार करता है कि मैंने काम को जीत लिया तू अन्तःकरण आदि से रहित शुद्ध अक्रिय स्वरुप है। अतः इस कल्पित अभिमान को त्याग कर स्वस्वरुप में स्थित हो जा। जब इस प्रकार आत्मनिष्ठ विष्णु जी उपासक रुप नारद को समझाया करता है तो वह शुद्ध हृदय होने से अपने स्वरुप को अकर्त्ता अभोक्ता अचल कूटस्थ शुद्ध निर्विकार चिन्मात्र रुप में यथार्थ अनुभव करके कर्त्ता भोक्ता के पारोच्छ अहंकार को त्याग कर स्वरुप में स्थित हो जाया करता है और परम शान्ति प्राप्त करके कृतकृत्य अवस्था को प्राप्त हो जाया करता है।

यही विष्णु जी द्वारा युक्ति द्वारा समझाकर नारद जी का अभिमान नष्ट करना है ज़िसे रामायण में इस प्रकार लिखा है।

चौ०—क्षीर सिन्धु गवने मुनि नाथा।
जहं वस श्री निवास श्रुति गाथा॥
काम चरित नारद सब भाषे।
जद्यपि प्रथम वरजि शिव राखे॥
नारद कहेऊ सहित अभिमाना।
कृपा तुम्हारी सकल भगवाना॥

तब विष्णु जी सोचे—

चौ०—करुना निधि मन दीख विचारी।
उर अंकुरेउ गरब तरु भारी॥
वेगि सो मैं डारिहऊं उखारी।
पन हमार सेवक हितकारी॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई।
अवसि उपाय करवि मैं सोई॥
सुनु मुनि मोह होइ मन ताके।
ज्ञान वैराग्य हृदय नहिं जाके॥

ब्रह्मचरन व्रत रत मति धीरा।
तुम्हहि कि करई मनोभव पीरा ॥
तब मुनि अति सभीत हरि चरना।
गहे पाहि प्रनतारति हरना ॥

दोहा—

बहु बिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु, तब भए अन्तरधान।
सत्य लोक नारद चले, करत राम गुन गान ॥

इस प्रसंग का यह तात्पर्य हुआ कि उपासक की उपासना द्वारा मन की बहिर्मुखता नष्ट होकर आत्मा में अनन्य अनुराग होकर एकाग्रता हो जाया करती है। इस प्रकार उपासक उपासना के प्रभाव से ही समस्त चित के विकारों को नष्ट करके अन्तर्मुख हो जाया करता है, किन्तु आत्मा का यथार्थ स्वरुप न जानने के कारण उसे कर्त्ता भोक्तापने का अभिमान बना रहता है। जब वह आत्मानुभवी सन्तो का श्रद्धा पूर्वक सत्संग करता है तो कृत उपासक होने के कारण आत्मा के यथार्थ स्वरुप का श्रवण करने मात्र से ही कर्त्ता अभिमान नष्ट होकर स्वरुप में स्थिति हो जाया करती है। अतः जो साधक विचार करने में निपुण न होवे तो वह उपासना द्वारा ही चित्त को अन्तर्मुख करे और फिर अनुभवी सन्तों के उपदेः ही आवरण नष्ट करके स्वरुप में स्थित हो जावे

परशुराम संशय

श्री राम जी ने धनुप को तोड़ दिया तो सीता जी ने श्री राम के गले में जयमाल डाल कर उन्हें अपने पति रुप में स्वीकार कर लिया। जव धनुष के टूट जाने की चर्चा परशुराम जी ने सुनी तो वह वहां आ पहुंचे और उन्होंने वड़े विस्मय पूर्वक पूछा कि यह इतना महान् धनुप किसने तोड़ा और कैसे तोड़ा ? तव लक्ष्मण जी ने कहा कि यह धनुष तो श्री राम जी के देखने मात्र से ही टूट गया। इसके इसके टूट जाने पर अव श्री राम जी को न कोई लाभ है न हानि है, अर्थात् सम रुप में स्थित हैं। किन्तु परशुराम की समझ में यह वात न आई, अतः वह और संदिग्ध होकर अधिक विक्षिप्त हो गये। तो श्री राम जी ने उन्हें ठीक-ठीक समझाया। अन्त में परसराम ने राम को धनुप चढ़ाने के लिए दिया। धनुष पर चाप आप से आप ही चढ़ गया तव परसराम का संशय निवृत हो गया और उन्होने श्री राम जी को यथार्थ स्वरुप में जान लिया। इस प्रसंग

के द्वारा हम यह समझावेंगे कि साधक का आत्मानुभवी के पास जाने से किस प्रकार उसका संशय निवृत होकर उसे स्वरुप का यथार्थ बोध हो जाया करता है।

अब इस प्रसंग को अध्यात्म रुप में ऐसे समझो कि जब कोई आत्मा रुप राम, अज्ञान रुप (देहाभिमान रुप) धनुष को स्वरुप के यथार्थ ज्ञान द्वारा नष्ट कर दिया करता है तो उसे शक्ति रुप सीता की स्वाभाविक ही प्राप्ति हो जाया करती है। और वह अपने सच्चिदानन्द स्वरुप में शान्ति रुप सीता के सहित बड़ी ही शोभा को प्राप्त हो जाया करता है तब साधक रुप परसराम आत्मा रुप राम की ज्ञान निष्ठा को सुनकर उसके पास भी स्वाभाविक आया ही करता है और दृढ़ जिज्ञासु रुप आवेश में उनसे यह प्रश्न किया करता है कि इस अज्ञान रुप धनुप को कैसे तोड़ा जाता है ? यही श्री राम जी के धनुष तोड़ने पर उसे सुनकर परसराम का श्री राम के पास आकर यह प्रश्न करना है जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है।

चौ०—लेति चढ़ावत खैंचत गाढ़े।
काहू न लखा देख सब ठाढ़े॥
तेहि छन मध्य राम धनु तोरा।
भरे भुवन धुनि घोर कठोरा।

गावहिं छवि अवलोक सहेली।
सिय जय माल राम उर मेली॥
तेहि अवसर सुन शिव धनु भंगा।
आयउ भृगु कुल कमल पतंगा॥
राम हि चितइ रहे थकि लोचन।
रुप अपार मार मद मोचन॥
अति रिष बोले वचन कठोरा।
कहु ज्रड़ जनक धनुष कै तोरा॥

जब साधक रुप परसराम यह प्रश्न किया करता है कि यह अज्ञान रुप महान धनुष कैसे तोड़ा ? तो आत्मा रुप राम का विवेक रुप लक्ष्मण यह उत्तर दिया करता है कि आत्मा रुप राम ने अपने ज्ञान दृष्टि से जैसे ही अज्ञान रुप धनुष को देखा तो बह देखते ही टूट कर आपसे आप नष्ट हो गया। अर्थात् जैसे ही आत्मा रुप राम ने यह अपने यथार्थ रुप को इस प्रकार जाना कि मैं तो बोध रुप हूं। 'मैं देह नहीं हूं' तो यह ज्ञान दृष्टि करते ही देहाभिमान रुप अज्ञान धनुप आप से आप ही नष्ट हो गया। इस देहाभिमान रुप अज्ञान धनुष के नष्ट हो जाने से आत्मा रुप राम को अब हानि लाभ का दु:ख सुख नहीं रहा। अर्थात् देहाभिमान नष्ट हो जाने से आत्मा रुप राम अपने

स्वरुप में स्थित होकर सम अवस्था को प्राप्त हो गये हैं। आत्मा रुप राम को ज्ञान:दृष्टि से ही वह आप से आप टूट गया। आत्मा रुप राम ने कुछ भी तोड़ने का प्रयास न किया। अतः तुम इस संशय रुप प्रश्न काल से क्यों क्षुब्ध हो रहे हो। जब इस प्रकार विवेक रुप लक्ष्मण समझाया करता है तो पहले-पहले साधक रुप परसराम उसे ठीक-ठीक नहीं समझ पाता अतः हृदय में अधिक संदिग्ध होकर और अधिक क्षुब्ध हो जाया करता है। यही लक्ष्मण के वचनों को ठीक-ठीक न समझकर परसराम का वह रोस करना है। जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है।

लक्ष्मण बोले–

चौ०–का छति लाभु जुन धनु तोरे।
देखा राम नयन के भोरे॥
छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू।
मुनि बिन काज करिऊ कत रोसू॥

जब साधक रुप परसराम विवेक रुप लक्ष्मण के वचनों को ठीक-ठीक न समझने के कारण अधिक संदिग्ध होकर बहुत विक्षिप्त हो जाते हैं और ज्ञान निष्ठ आत्मा रुप राम से बार-बार यह पूछने लगते है कि इस अज्ञान रुप

नुष को नष्ट करने से तो सारे जगत को जीतने का सबसे महान् कार्य सिद्ध हो जाता है। क्या इतना महान् कार्य करके भी आपको इसका अभिमान नहीं हुआ। आपको इसका अभिमान अवश्य हुआ होगा। तब ज्ञाननिष्ठ आत्मारुप राम बोले कि यद्यपि यह देहाभिमान रुप अज्ञान धनुष की बहुत काल से प्रतीत हो रहा था, अतः पुराना धनुष था। फिर भी स्वरुप के यथार्थ बोध से ही इसका अभाव हो गया, अर्थात् "मैं देह हूं" यह देहाभिमान रुप अज्ञान-स्वरुप के ठीक-ठीक न जानने के कारण ही भास रहा था। किन्तु जब यह जाना कि आत्मा तो अखण्ड बोध स्वरुप, गुणों से अतीत व्यापक नित्य मुक्त अचल निर्विकार दृष्टामात्र अपना आप ही है ...र देह इन्द्रि, मन आदि सब दृश्य उसमें कल्पित हैं। तो यह बोध दृष्टि जैसे ही प्रगट हुई तो देहाभिमान रुप अज्ञान धनुष आप से आप ही टूट कर नष्ट हो गया। बोध दृष्टि प्रगट होने से अज्ञानरुप धनुष का उसी प्रकार आपसे आप ही अभाव हो जाता है जैसे सूर्य के प्रकाश उदय होने पर अन्धेर का आप से आपही अभाव हो जाता है और जैसे जेवरी क ठीक-ठीक ज्ञान होने से उसमें सर्प का भ्रम आप से आप ...ष्ट हो जाता है। तब मैं कैसे अभिमान करुं कि मैंने

ान रूप धनुष को तोड़ा है। दूसरे जब मैं सर्व दृश्य का
ल दृष्टा मात्र ही हूं। किसी भी क्रिया का कर्ता
ता नहीं हूं बल्कि अक्रिय सदा अचल रुप हूं। तब मैं
अपने को किसी क्रिया का कर्त्ता अङ्गीकार करके यह
े कहूं कि मैंने अज्ञान रुप धनुष को नष्ट कर दिया।
ूरे मैंने जब ठीक-ठीक अपने स्वरुप को चीन्हा तो मुझे
ध ही बोध का केवल अनुभव हुआ। उसमें कहीं भी
ज्ञान दिखाई ही न दिया, और यही अनुभव हुआ कि इस
ध रूप में अज्ञान हो ही नहीं सकता, तब मैं कैसे
ूं कि मैंने अज्ञान रुप धनुष को नष्ट कर दिया।
ः बोध की यथार्थ दृष्टि में यह अभिमान करना कि
ंने अज्ञान को नष्ट कर दिया" कदाचित भी संभव नहीं
सकता, इसी को रामायण में इस प्रकार लिखा है।

परसराम बोले–

चौ०–भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा।
अहमिति मनहु जीति जगु ठाढ़ा।।

रामउवाच–

चौ०–छूअतहिं टूट पिनाक पुराना।
मैं केहि हेतु करों अभिमाना।।

फिर वोध निष्ठ आत्मा रुप राम साधक रुप परशु राम से वोले कि यदि तू यह कहे कि यह अज्ञान रुप देहाभिमान यदि आत्मा रुप राम में है ही नहीं और तुम्हें यह अपने स्वरुप में भासता भी नहीं तब मैं भी तो आत्मा रुप राम हूं फिर मुझे क्यों यह देहाभिमान अपने में भासता है ? तो इसका उत्तर यह है कि यद्यपि वास्तव में तो जैसा मैं आत्मा रुप राम हूं वैसा ही तू भी आत्मा रुप राम ही है, फिर भी मैं तो अपने वोध रुप राम मात्र स्वरुप में ही गुणों का कल्पित अभिमान त्याग कर स्थित हूं और तुम अभी गुणों की कल्पित अभिमान रुप परस के सहित राम हो अर्थात् अज्ञान को अङ्गीकार करके अपने यथार्थ बोधरुप राम में गुणोंके कल्पित धर्मों का अभिमान रुप परसा धारे हुए हो। अतः तुम अभी गुणों की उपाधी रुप परस के धारे हुए परस सहित राम हो। दूसरे हमारा तो एक यही स्वभाव है कि हम सब गुणों से रहित गुणातीत, सर्व गुणों के केवल दृष्टा मात्र हैं। सर्व दृश्य के प्रकाशक अष्ठान रुप हैं। अतः इस स्वभाव के कारण अजर अमर अखण्ड एक रस निर्विकार, परिपूर्ण, नित्य मुक्त, शुद्ध, वुद्ध और परमानन्द स्वरुप में स्थित हैं, किन्तु तुम तो अभी अन्तःकरण के कर्ता, भोक्ता, गमन, आगमन, सुखी, दुखी तामस, राजस तथा सात्विक वृति रुप नव धर्मों के अभि-

मान सहित हो। अर्थात् गुणों के धर्मों का अभिमान अपने में अङ्गीकार करके अपने में गुणों का अभ्यास किये हुए हो, इसलिए आपको अपने आत्मा रुप राम में यह देहाभिमान रुप अज्ञान भासता है और हमें गुणातीत हो जाने के कारण अपने में अज्ञान नहीं भासता। जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है।

चौ०—राम मात्र लघु नाम हमारा।
परसु सहित बड़ नाम तोहारा।
देव एक गुन धनुष हमारे।
नव गुन परम पुनीत तुम्हारे॥

फिर बोधनिष्ठ आत्मा रूप राम ने कहा कि हम सब देश, काल, वस्तु रूप दृश्य के प्रकाशक हैं। सत्ता स्फूर्ति देने वाले हैं। अतः हम अपना वास्तव स्वभाव बतलाते हैं कि काल आदि हमारा अभाव नहीं कर सकता। हम काल के भी काल हैं, अर्थात् काल आदि हमसे सिद्ध होते हैं। इनकी अपनी सत्ता नहीं। जिसे रामायण में इस प्रकार है।

चौ०—कहउं स्वभाव न कुलहि प्रसंसी।
कालहु डरहिं न रन रघुवंसी॥

तब साधक रूप परसराम ने बोधनिष्ठ आत्मा रूप राम से कहा कि यदि आप सब दृश्य के दृष्टा मात्र और प्रकाशक ही है तो आप अन्तःकरण और इन्द्रिय रूप धनुष दृश्य को प्रकाशये तब हम आपको दृष्टा अविशी बोधरूप समझें। तो उस समय बोधनिष्ठ आत्मा रुप राम ने गुणों के कार्य अन्तःकरण और इन्द्रियों का रुप धनुष अपने में अङ्गीकार न किया। अर्थात् किसी भी इन्द्रि और अन्तःकरण को व्योपार की सत्ता न दी। इससे बोधनिष्ठ आत्मा रूप राम ने साधक रूप परसराम को यह जनाया कि मैं शुद्ध चेतन साक्षी किसी इन्द्रि या अन्तःकरण आदि से सिद्ध नहीं होता। बल्कि मैं तो अपने होने में आपही प्रमाण हूं। अतः स्वयं सिद्ध हूं और अपने होने को आपही जानता हूं। किसी इन्द्रि आदि की अपेक्षा नहीं रखता अतः स्वयं प्रकाश स्वरूप हूं। फिर शुद्ध बोधनिष्ठ आत्मा रूप राम की सन्निधि मात्र से अन्तःकरण और इन्द्रिय आपसे आपही अपने कार्य में बर्तने लगे। मानो अन्तःकरण और इन्द्रियों ने आपसे आप ही अपने-अपने कार्य में वर्त कर यह दिखाया कि हम शुद्ध बोध रुप आत्मा को सिद्ध नहीं कर सकते बल्कि हम तो स्वयं शुद्ध बोध से सत्तावान होकर अपना-अपना कार्य करते हैं। अतः हमारी शुद्ध बोध से भिन्न सत्ता नहीं। यही परसुराम का राम को धनुष चढ़ाने

के लिए देता है और राम की सन्निधि से धनुष का आपसे आप चढ़ जाना है । जिसे रामायण में इस प्रकार लेखा है ।

चौ०—राम रमापति कर धनु लेहू ।
खैंचत मिटै मोर संदेहू ॥
देत चापु आपहि चढ़ि गयऊ ।
परशुराम मन विस्मय भयऊ ॥

साधक रुप परशुराम को यह विस्मय हुआ कि जिस बोध रुप आत्मा को वह इन्द्रिय और मन, बुद्धि से सिद्ध करना चाहता था, और जानना चाहता था, वह किसी भी इन्द्रि और मन, बुद्धि से न तो सिद्ध ही हुआ और न जाना ही गया । बल्कि वह तो स्वयं सिद्ध और स्वयं प्रकाश अद्वैत सत्ता रुप में अनुभव हुआ और उल्टे बुद्धि, इन्द्रि आदि ही उसी से सिद्ध होते और प्रकाशित होते मालूम पड़े । ऐसा रहस्यमय बोध उसको बोधनिष्ठ आत्मा रुप राम से हुआ । तब उसको स्वरुप का यथार्थ बोध प्रत्यक्ष हो गया और उसका संशय आवरण नष्ट हो गया, और बोधनिष्ठ आत्मा रुप राम की वास्तविक स्वरुप स्थिति रुप प्रभाव [illegible]

परमानन्द का अनुभव करने लगा। जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है।

चौ०–सुनि मृदु गूढ़ वचन रघुपति के।
उघरे पटल परसुधर मति के॥

दो०–जाना राम प्रभाव तव, पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले वचन, हृदय न प्रेम समात॥

इस प्रसंग का मह तात्पर्य हुआ कि साधक को आत्मा का यथार्थ वोध होकर तभी स्वरुप स्थिति होती है जबकि वह आत्मानुभवी सन्त की सत्संग में जाकर उनकी बताई ई युक्ति द्वारा गुणो के कल्पित धर्मों का अभिमान त्याग कर देता है, अर्थात् आत्मा को शरीर, इन्द्रि, मन, गुण, तत्व आदि सर्व दृश्य से अतीत समझ कर इनको धर्मों के सहित अध्यास को आत्मा में से त्याग देता है और आत्मा को गुणों से अतीत, सच्चिदानन्द मात्र, निर्विकार अखण्ड एक रस, परिपूर्ण, नित्य मुक्त रुप अपना आप करके अनुभव करता है। दूसरे साधक जब तक आत्मा को ज्ञेय जानकर मन,बुद्धि आदि द्वारा जानने का प्रयत्न किया करता है। तब तक वह उसे नहीं जान पाता। जब मन, बुद्धि आदि सबको

उसीमें विलय कर देता है और आत्माको स्वयं सिद्ध और स्वयं प्रकाश रूप अनुभव करता है अर्थात् आत्मा को अपने सिद्ध होने में किसी इन्द्रि, मन आदि की अपेक्षा नहीं। अतः स्वयं सिद्ध सत्ता है और अपने होने को आपही प्रकाशती है। मन, बुद्धि, आदि की अपेक्षा नहीं रखती। अतः स्वयं प्रकाश रुप है। उससे भिन्न दृश्य की सत्ता नहीं। वही स्त्रयं सत्ता अनुभव रुप से सदा आप ही आप विद्यमान है। ऐसा जत्र अपने में प्रत्यक्ष अनुभव किया करता है, तभी आवरण आदि नष्ट होकर उसकी स्वरुप में स्थिति हो जाया करती है।

—:०:—

राम राज्य

श्रीराम जी ने रावण को मार कर सीता ज़ी को प्राप्त किया और चौदह वर्ष की बनवास अवधि समाप्त होने पर पुनः लक्ष्मण, हनुमान, विभीषण, सुग्रीव, जामवन्त आदि तथा सीता जी के सहित अयोध्या में जाकर वहाँ का निष्कंटक राज्य करने लगे। श्रीराम के राजा हो जाने पर अयोध्या वासी प्रजा के सब शोक ताप नष्ट हो गये, और बड़ा ही अमन चैन हो गया। इस प्रसंग के द्वारा हम यह समझावेंगे कि जीवन्मुक्ति किसे कहते हैं, और जीवन्मुक्ति का क्या स्वरुप है।

अब इस प्रसंग को अध्यात्म रुप में यों समझो कि जब (देहाभिमानी आत्मा) साधक रुप राम विवेक, वैराग्य रुप लक्ष्मन हनुमान आदि द्वारा मोह रुप रावण को उसकी आसुरी वृति रुप सेना सहित नष्ट कर दिया करता है, तो उस समय साधक की मति रुप सीता आत्माकार (अन्तर्मुख होकर आत्मा रुप राम में ही स्थित हो जाया करती है

अर्थात् आत्मा रुप राम से उस समय मति रुप सीता का आत्माकार हो जाने के कारण मिलाप हो जाया करता है, तो मति रुप सीता के आत्माकार होकर आत्मा रुप राम से मिलने पर साधक देहाभिमानी आत्मा रुप राम का देहाभिमान रुप वनवास समाप्त हो जाया करता है अर्थात् चौदह इन्द्रियों के धर्मों का अभिमान रुप चौदह वर्ष का वनवास समाप्त हो जाया करता है। तव आत्मा रुप राम विवेक, वैराग्य रुप लक्ष्मण हनुमान, विचार रुप विभीषण, धीरज रुप जामवन्त तथा आत्माकार वृति रुप परम शान्ति सीता जी के सहित शरीर रूपी अयोध्या में और वहाँ पञ्च ज्ञान इन्द्रिय, पञ्च कर्म इन्द्रिय, पञ्च प्राण चतुष्य अन्तःकरण रुप अयोध्या वासी प्रजा का द्रष्टा रुप राजा बन जाया करता है। यही राम का वनवास समाप्त होने पर लक्ष्मण, हनुमान, विभीषण, सीता जी आदि के सहित अयोध्या लौट कर वहाँ का राजा हो जाना है। जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है कि—

दो०—कपि पति नील रीछ पति, अंगद नल हनुमान।
सहित विभीषण अपर जे, जूथप कपि बलवान॥

चौं०—अतिसय प्रीति देखि रघुराई।
लीन्हें सकल विमान चढ़ाई॥

दो०—आवत देखि लोग सब, कृपासि[illegible]
नगर निकट प्रभु प्रेरेऊ, उतरेउ भू[illegible]

चौ०—छन में सबहि मिले भगवाना।
उमा मरम यह काहू न जाना॥
सब द्विज देहि हरष अनुशासन।
रामचन्द्र बैठहिं सिहासन॥
रवि सम तेज सो बरनि न जाई।
बैठे राम द्विजन्ह सिरू नाई॥

इसका तात्पर्य यह है कि जब साधक विवेक वैराग्य आदि चतुष्टय साधन सम्पन्न होकर आत्मा के श्रवण, मनन, निदिध्यासन रूप आत्म विचार द्वारा आसुरी वृति रूप वासना, ममता तथा देहाभिमान को नष्ट करके वृति को आत्माकार अन्तर्मुख कर लेता है और स्वरूप में स्थित होकर सब दृश्य का दृष्टामात्र राजा हो जाता है तब वह जीवन्मुक्त कहलाता है।

अब इसमें यदि यह शंका की जावे कि राजा के पास तो मंत्री, सेना, रानी, कोष आदि सब होते हैं तो इसका उत्तर यह है कि उस स्वरूप में स्थित मुक्त आत्मा रूप राजा राम के पास भी वैराग्य रूप हनुमान, विचार रूप विभीषण, धीरज रूप जामवन्त आदि मंत्री मण्डल स्वाभाविक रहा करता है। निर्मल हृदय रूप पवित्र रजधानी

होती है। शम, दम, यम, नियम, संतोष आदि सात्विक वृति रूप सेना रहा करती है और आत्माकार वृत्ति [परम शान्ति] रूप ही पवित्र रानी रहा करती है और अखण्ड स्वरूप का बोध ही उसका अक्षय कोष हुआ करता है। वह मोह आदि शत्रु राजाओं को आसुरी वृति रूप सैना के सहित नष्ट करके शरीर रूप अयोध्या में इन्द्रिय, प्राण आदि दृश्य रूप प्रजा पर दृष्टा भाव से निष्कंटक आनन्द रूप राज्य किया करता है। इसे रामायण में भी इसी प्रकार लिखा है।

चौ०–सचिव विरागु विवेक नरेसू।
देह सुहावन पावन देसू॥
भट जम नियम सैल रजधानी।
शांति सुमति सुचि सुन्दर रानी॥

दो०–जीति मोह महिपाल दल, सहित विवेक भूआलु।
करत अकंटक राजु पुर, सुख संपदा सुकालु॥

स्वरूप में स्थित मुक्त आत्मा रुप राम स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों शरीर को अभिमान नष्ट हो जाने से शरीर रूप तीनों लोकों में अमन चैन हो जाया करता क्योंकि देहाभिमान से मुक्त आत्मा रुप रा पित्त, कफ से जायमान शारीरिक ताप शीत,

दैवी प्रकोप से होने वाले दैविक ताप और चोर, व्याध आदि से जायमान भौतिक ताप, इन तीनों तापों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अर्थात् जीवन्मुक्त पुरूष के हृदय में से तीनों तापों का अभाव हो जाता है और उसकी वृति स्वरुपाकार हो जाने के कारण उसमें रोग, द्वेष रुप विषमता का अभाव होकर समता भाव में स्थित हो जाया करती है। उसकी इन्द्रिय अन्तःकरण प्राण आदि रुप सब प्रजा निर्वासनिक हो जाने के कारण शास्त्र सम्मत आचार का पालन किया करती है और सदा क्षोभ से रहित शान्त रहा करती है। उसके निर्मल अनुभव रुप हृदय में स्वरुप के अजर अमर रूप का यथार्थ ज्ञान हो जाने के कारण जन्म मरण आदि का भय नहीं रहता। दृश्य पदार्थों के सत्ताहीन जान लेने के कारण उसके नष्ट होने का शोक नहीं हुआ करता और उनकी प्राप्ति में हर्ष भी नहीं होता। वह दृश्य की आस्था से रहित हो जाता है अतः उसके अनुभव रुप निर्मल हृदय में ममता, वासना आदि रोग भी नहीं रहते। जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है।

चौ०—राम राज बैठे त्रय लोका।
हरषित भए गए सब शोका॥
दैहिक, दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहहि व्यापा।

वयरु न करे काहू सन कोई।
राम प्रताप विषमता खोई ॥

दो०—वरनाश्रम निज निज धर्म, निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय शोक न रोग ॥

जीवन्मुक्त आत्मा रुप राम की सब इन्द्रिय, अन्तःकरण रुप प्रजा विषयपरायण न रहकर आत्मपरायण रहा करती हैं। आत्मा रुप राम में ही प्रीति किया करती हैं और विषय-आसक्ति से रहित रहकर सदा आत्मानन्द रुप दुर्लभ भोग का आनन्द लिया करती है। जिसे रामायण में लिखा है—

चौ०—हरषित रहहिं नगर के लोगा।
करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा ॥
अह निसि यह मनावत रहहीं।
श्री रघुवीर चरन रति चहहीं ॥

और जीवन्मुक्त आत्मा रुप राम के विवेक रुप लक्ष्मण प्रेम रुप भरत तथा सदाचार रुप शत्रुघ्न भाई सदा आत्मा रुप राम में ही प्रीति किया करते हैं और सदा राम की आज्ञा में चलकर सेवा किया करते हैं, लिखा है—

चौ०–सेवहिं सानुकुल सब भाई।
राम चरन रति अति अधिकाई॥
प्रभु मुख कमल विलोकत रहहीं।
कबहूं कृपाल हमहिं कछु कहहीं॥

तथा जीवन्मुक्त आत्मा रुप राम की आत्माकार वृति रुप सीता सदा ही विषयों से विमुख रहकर आत्मा रूप राम के सन्मुख रहकर सदा उसके अनुकूल रहा करती हैं। वह आत्मा रुप राम को परमानन्द रुप महिमा को जान कर सदा उसी का आनन्द लिया करती हैं। अतः वह सदा ही विक्षेप से रहित सत्वगुण रुप शोभा से युक्त, परमशान्त रुप सुशीतल और सम भाव में स्थित रह कर परम पवित्र रहा करती है। लिखा है–

चौ०–पति अनुकूल सदा रह सीता।
सोभा खानि सुसील विनीता॥
जानति कृपा सिन्धु प्रभुताई।
सेवत चरन कमल मन लाई॥
निज कर गृह परि चरजा करई।
रामचन्द्र आयसु अनुसरई॥

इस प्रकार जब जीवन्मुक्त आत्मा रुप राम की वृति ज्ञानाकार ही हो जाया करती है तो उसके हृदय में एक मात्र बोध रुप सूर्य का ही प्रकाश उदय हो जाया करता है और उसके प्रभाव से देहाभिमान असत दृश्य में सतबुद्धि रुप अविद्या रुप निसा का आप से आप अभाव हो जाया करता है, 'और अविद्या की निसा में विचरने वाले' दुराचार रूप अघ जो लल्लू होते हैं, वह भी उसके हृदय से भाग जाया करते हैं। भोगों की इच्छा रुप काम और इच्छा की आपूर्ति क्रोध रुप कैरव भी उसके हृदय से नष्ट हो जाया करते हैं। उस बोध रुप सूर्य के प्रकाश में दूसरे से घृणा रुप मत्सर, इन्द्रियों के धर्मों का अभिमान, दृश्य भोगों को ममता रूप मोह आदि चोर भी आप से आप भाग जाया करते हैं। बोध रुप सूर्य प्रकाश में कर्म का सुख-दुःख रुप फल, गुणों का कल्पित सम्बन्ध तथा कालकृत हानि-लाभ आदि चकोरों की भी दाल नहीं गलती है। क्योंकि यह सब अविद्या रुप रात्री के आश्रय हो कर ही हृदय में रहा करते हैं। अतः जब आत्मा के यथार्थ बोध रुप प्रकाश द्वारा अविद्या रुप रात्रि का अभाव हो जाता है तो यह अविद्या से प्रतीत होने वाले, आसुरी विकार भी आप से आप ही जीवन्मुक्त आत्मा के हृदय से नष्ट हो जाया करते हैं। जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है—

चौ०–जब ते राम प्रताप खगेसा ।
उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा ॥
हुए अभाव ते कहऊ वखानी ।
प्रथम अविद्या निसा नसानी ॥
अघ उलूक जह तह लुकाने ।
काम क्रोध कैरव सकुचाने ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा ।
इन्हकर हुनर न कवनिहुं ओरा ॥
विविध कर्म गुन काल सुभाऊ ।
ए चकोर सुख लहहिं न काऊ ॥

का यह तात्पर्य हुआ कि जो साधक विवेक वैराग्य आदि साधनों से सम्पन्न होकर आत्म अनुभवी सन्तों की सत्संग द्वारा श्रद्धा पूर्वक आत्म का श्रवण करता है तथा फिर उस श्रवण किये हुए का मनन और निदिध्यासन करके दृश्य की आस्था को नष्ट करता है । दृश्य की ममता, वासना तथा शरीर में से आत्मबुद्धि रुप आवरण को नष्ट करके स्वरुप में वृति को स्थित करता है इस प्रकार जो विचार द्वारा गुणों के धर्मों का अभिमान त्याग

कर अपने गुणातीत शुद्ध बुद्ध अखण्ड एक रस परिपूर्ण अजर अमर नित्य मुक्त, परमानन्द बोध मात्र स्वरुप में स्थित हो जाता है। उसे जीवन्मुक्त कहते हैं क्योंकि वह अपने वास्तविक बोध मात्र अखण्ड जीवन में स्थित होकर मिथ्या शरीर, इन्द्रि, गुणों के कल्पित अभिमान से मुक्त हो जाता है। इसीलिए उसे जीवन्मुक्त कहते हैं। जब तक उसके कल्पित शरीर का प्रारब्ध संस्कार शेष रहता है, तब तक उसकी स्वरुपाकार वृति बनी रहती है। उसे जब तक प्रारब्ध वश वृति स्वरुपाकार बनी रहती है। और हमेशा के लिए लय को प्राप्त नहीं हो जाती, तब तक की अवस्था को जीवन्मुक्ति कहते हैं। उसे जीवन्मुक्ति की अवस्था में ज़ीवन्मुक्त के हृदय में एक अखण्ड बोध का ही निरन्तर भान बना रहता है। विवेक, वैराग्य, विचार आदि सात्विक बृतियां स्वभाविक उसके हृदय में अनुभव रुप होकर रहा करती है और उसके हृदय से दृश्य की आस्था नष्ट हो जाने के कारण, राग, द्वेष, ममता, वासना, देहाभिमान तथा समस्त आसुरी विकारों का अविद्या सहित स्वभाविक ही अभाव हो जाया करता है। वह सदा सम, शान्त रहता है उसकी स्वभाविक स्वरुप दृष्टि बनी रहती है। अतः उसे सदा एकमात्र अपना आपही भासता है। द्वैत का सर्वथा अभाव रहता है। वहां अपना ही आतम रुप राम का राम राज्य अर्थात् अपना ही राज्य है।

सातवाँ अध्याय

श्रीराम-रुप

श्रीराम चरित मानस में श्रीराम जी के दो रुपों का वर्णन आया है। एक तो सच्चिदानन्द शुद्ध ब्रह्म अखण्ड, एक रस, परिपूर्ण अजर अमर गुणों से अतीत निर्गुण, निराकार चिन्मात्र रुप का दूसरे पीत वस्त्र से सुशोभित बाण तरकस आदि युक्त धनुषधारी सगुण और साकार रुप का। श्री पारवती जी ने श्री शिव जी महाराज जी से राम के इन निर्गुण और सगुण दोनों रुपों का भेद जानने के लिए उनसे पूछा है, और श्री शिव जी महाराज जी उन्हें भली प्रकार समझाया है। इस प्रसंग के द्वारा हम यह समझावेंगे आत्मा का निरुपाधिक और ओपाधिक स्वरुप क्या है और इनमें से आत्मा का वास्तविक स्वरुप क्या है ?

अब इस प्रसंग को अध्यात्म रुप में यों समझों कि आत्मानुभवी बोध रुप शिव जब से साधक की साधन

सम्पन्न मति रुप पारवती दृढ़ जिज्ञासा पूर्वक विनम्र भाव से यह पूछा करती है कि आत्मा रुप राम का वास्तविक रुप क्या है ? यदि आप मुझे उसका अधिकारी समझते हो तो उस गूढ़ तत्व को मुझे समझाने की कृपा करो। जिसे इस प्रकार लिखा है।

चौ०–गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं।
आरत अधिकारी जहं पावहिं॥
अति आरत पूछऊं सुरराया।
रघुपति रुप कहहू करि दाया।

तब आत्मानुभवी सन्त रुप शिव उसे अधिकारी ज़ान-कर आत्मा रुप राम के वास्तविक रुप को इस प्रकार समझाया करते हैं कि–

चौ०–राम सच्चिदानन्द दिनेसा।
नहिं तहं मोह निसा लवलेसा॥
सहज प्रकाश रुप भगवाना।
नहिं तहं पुनि विज्ञान विहाना॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना।
परमानन्द परेस बखाना॥

सबकर परम प्रकाशक जोई ।
राम अनादि अवधपति सोई ।।
जगत प्रकास्य प्रकाशक रामू ।
मायाधीस ग्यान गुण धामू ।।
जासु सत्यता ते जड़ माया ।
भास सत्य इव मोह सहाया ।।

दोहा–रजत सीप महूं भास जिमि,
जथा भानु कर वारि ।
जदपि मृषा तिहुं काल सोइ,
भ्रम न सकई कोई टारि ।।

चौ०–एहि विधि जग हरि आश्रित रहई ।
जदपि असत्य देत दुख अहई ।।
जासु कृपा अस भ्रम मिट जाई ।
गिरिजा सोई कृपाल रघुराई ।।
सुमिरत जाहि मिटई अज्ञाना ।
सोई सरवग्य राम भगवाना ।।

अर्थात् यह आत्मा ही सर्वत्र आप ही आप रमा हु
है । अतः यह राम है, इसका नाश नहीं होता और

अपने होने में आप ही सदैव प्रमाण है । अर्थात् 'मैं हूं' ऐसी इसकी स्वाभाविक हर समय मौजूदी रहती है । 'मैं नहीं हूं' ऐसा अपने अभाव को यह कभी नहीं प्रकाशता अतः यह सत् है ।अपने होने का इसे स्वाभाविक भान है । अतः यह बोध रुप चित है । इसमें अज्ञान रुप रात्रि का सदा अभाव है । अर्थात यह अज्ञान संकलिपत तीन गुण और पञ्च तत्व से रचित देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदि सब दृश्य से अतीत हैं । अतः सदा आनन्द रुप है । यह अखण्ड बोध रुप इसमें बोध के सिवा अन्य कुछ है ही नहीं । अतः यह निर्गुण और निराकार है । न इसका आदि है और न अन्त है । अतः यह अनादि और अनन्त है । यह अजर अमर एक रस है । सर्व दृश्य का प्रकाशक दृष्टा साक्षी रुप है जैसे कल्पना से जेवरी ही सांप और सूर्य की धूप में रेत ही जल और सीपा ही रुपी होकर भासने लगता है । तैसे ही कल्पना से सर्व दृश्य रुप होकर भी यही भास रहा है । वास्तव में इस बोध मात्र आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं हैं । इसके यथार्थ बोध से ही सब दृश्य का द्वैत भ्रम आप से आप ही मिट जाता है । अतः आत्मा रुप राम ह शुद्ध बुद्ध मुक्त अचल अखण्ड एक रस अजर अमर अनन्त परमानन्द निर्गुण निराकार बोध मात्र ही रुप है ।

तब साधक की मति रूप पारवती यह प्रश्न किया करती है कि यदि यह आत्मा रुप राम वोध मात्र निर्गुण निराकार व्रह्म ही है तो फिर यह सगुण साकार पीताम्बर देहधारी रुप में होकर क्यों भासता है ? जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है ।

चौ०–प्रथम सो कारण कहो विचारी ।
निर्गुण ब्रह्म सगुन वपु धारी ॥

तो उस समय आत्मानुभवी सन्त रुप शिव इसका यह उत्तर दिया करते हैं कि यद्यपि वास्तव में तो यह आत्मा रुप राम सदा अज, अचल, अमर, अखण्ड बोध मात्र शरीर इन्द्रि आदि से रहित और निर्गुण, निराकार रुप ही है फिर भी यही आत्मा चिदानन्दमय होते हुए भी साधक रुप भक्त की कल्पना रुप भावना की दृढ़ आस्था रुप प्रेम वश ही गुणों का अध्यासकर लेने के कारण उसकी शरीर रुप पट, इन्द्रिय रुप धनुष, मन रुप तीर और वुद्धि रुप तरकस से युक्त पीताम्बर धनुषधारी सगुण साकार रुप में दिखाई दिया करती है, अर्थात् कल्पना की दृढ़ता से ही यह इन्द्रि गुण आदि से रहित आत्मा रुप राम देह, इन्द्रि, मन

वुद्धि, गुण वाली सगुण और साकार होकर भासती है। जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है।

चौ०—अगुन अरुप अलख अज सोई।
भगत प्रेमवश सगुन सो होई॥

दो०—व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन विगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति वश, कौशल्या की गोंद।

दो०—ग्यान गिरा गोतीत अज, माया मन गुन पार।
सोई सच्चिदानन्द घन, कर नर चरित उदार॥

अर्थात् जब तक कल्पना से आत्मा में गुणों का दृढ़ अभिमान बना रहता है और दृश्य में आस्था रहती है तब तक भावना ही से वोध रुप ही निर्गुण निराकार आत्मा गुण शरीर, इन्द्रि, मन, वुद्धि, आदि से युक्त सगुण और साकार होकर भासता रहता है और जब विचार पूर्वक कल्पित गुणों के अध्यास को आत्मा में से त्याग कर दिया जाता है तो आत्मा, देह,इन्द्रि,मन,वुद्धि, गुण आदिसे रहित निर्गुणऔर निराकार वास्तविक वोध रुपमें ही स्वाभाविक अनुभव होने लगती है। यदि इसमें यह शंका की जावे कि

निर्गुण आत्मा कल्पना से सगुण रुप होकर कैसे भासने लगती है तो इसका उत्तर यह है कि जैसे एक स्वर्ण ही कल्पना की दृढ़ता से कंकण, हार आदि अनेक आभूषणों के आकारों में भिन्न-भिन्न करके भासने लगता है। एक मिट्टी ही नाना घड़ा, सुराही आदि वर्तनों के अनेक रुप में भासने लगती है। एक जल ही बुदवुदा, लहर, बर्फ, ओला आदि अनेक रुपों में भासने लगता है। ऐसे ही एक बोध रुप निराकार आत्मा भी कल्पना की दृढ़ता से शरीर, इन्द्रि मन, वुद्धि, प्राण, पञ्च विषय, स्थावर जंगम एवं समस्त दृश्य पदार्थों के अनेक रुपों में भिन्न-भिन्न होकर भास रहा है और स्वर्ण कल्पना से अनेक आभूषणों के रुप में भासता हुआ भी एक स्वर्ण ही है। मिट्टी अनेक वर्तनों के रुप में भासते हुए भी एक मिट्टी ही है और जल अनेक हिम, उपल, लहर आदि रुप में कल्पना से भासते हुए भी एक जल ही है। उसी प्रकार अखण्ड वोध मात्र निर्गुण, निराकार आत्मा भी कल्पना से शरीर, मन, वुद्धि, स्थावर, जगम तथा यावत दृश्य के अनेक आकारों में भासता हुआ भी वास्तव में एक बोधमात्र निर्गुण निराकार आत्मा ही है।

उससे भिन्न कुछ नहीं, इसलिये आत्मा के निर्गुण निराकार रुप से सगुण साकार रुप का वास्तव में कोई भेद ही नहीं एक वही वोध रुप है जिसे रामायण में भी इस प्रकार लिखा है।

चौ०—जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे।
जलु हिम उपल विलग नहीं जैसे।।
सगुनहि अगुनहि नहि जब भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।।

इस प्रकार यदि यथार्थ बोध दृष्टि से देखा जाय तो एक वोध ही वोध ठसाठस सर्वत्र भरपूर है और सदा आप ही आप अपने में ज्यों का त्यों एक रस निर्विकार सम शान्त रुप में स्थित है। जिनको आत्मा का यथार्थ अनुभव हुआ है उन्हें तो सदा एक वोध ही वोध रुप भासता है भिन्न कुछ नहीं भासता किन्तु हे पारवती स्वरूप के प्रमाद से जिनका हृदय रुप सीशा दृश्य की दृढ़ आस्था से अहं ममता रूप धूल से मलिन हो गया है और यथार्थ ज्ञान दृष्टि से विहीन होकर वहिर्मुख हो गये हैं। उन्हें इस आत्मा रुप राम का यथार्थ वोध मात्र निर्गुण रुप कैसे दिखाई

दे सकता है, अर्थात् उन्हें यह आत्मा का यथार्थ अनुभव रुप नहीं मालूम पड़ता। वह तो विवेक रहित होने के कारण आत्मा में अनेक रुपों की कल्पना ही किया करते हैं। जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है।

चौ०—मुकुर मलिन अरु नयन विहीना।
राम रुप देखहिं किमि दीना॥
जिन्हके अगुन न सगुन विवेका।
जल्पहिं कल्पित वचन अनेका॥

इस प्रकार जब आत्मानुभवी सन्त रूप शिव साधक की मति रुप पारवती को आत्मा रुप राम का यथार्थ बोध रुप जनाया करता है तो साधक की मति के सब संशय दूर हो कर सब शोक नष्ट हो जाया करते हैं और उसे आत्मा रुप राम के यथार्थ रुप का यथार्थ वोध होकर परम शान्ति की प्राप्ति हो जाया करती है जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है।

चौ०—सुनि शिव के भ्रम भजन वचना।
मिटि गे सब कुतरक कै रचना॥
नाथ कृपा अब गयो विषादा।
सुखी भयउ प्रभु चरन प्रसादा॥

तुम्ह कृपाल सबु संसय हरेऊ।
राम स्वरुप ज़ानि मोहि परेऊ ॥

और तब वह साधक को मति रुप पारवती वही रुप होकर अपने अनुभव को इस प्रकार कहा करती है कि वास्तव में आत्मा रुप राम चिन्मात्र, अविनाशी, सर्व गुणों से अतीत और सर्व रुप ब्रह्म हैं। जिसे रामायण में इस प्रकार लिखा है–

पारवती बोलीं–

चौ०–राम ब्रह्म चिन्मय अविनाशी।
सर्व रहित सब उर पुर बासी ॥

इस प्रसंग का यह तात्पर्य हुआ कि आत्मा रुप राम का तो सच्चिदानन्द, अजर, अमर, अविनाशी, अखण्ड, एक रस, पूर्ण, शुद्ध, निर्विकार, एक रस, परमानन्द, अद्वैत, अचल, निर्गुण और निराकार नित्य युक्त: कल्पनातीत और केवल बोध मात्र ही निरुपाधिक ही असली रुप है, और वही बोध मात्र आत्मा भावना की दृढ़ता से शरीर इन्द्रिय मन, बुद्धि, स्थावर जंगम तथा यावत दृश्य देश काल वस्तुओं के अनेक अकारों में होकर उसी प्रकार भासती है, जिस प्रकार कि एक ही निर्गुण विकार बोध मात्र ... दृश्य भावना मात्र से स्वप्न के सर्व देश, काल, व...

नाना दृश्य पदार्थों के आकार में होकर भासा करता है, किन्तु कल्पना से अनेक आकारों में भासता हुआ भी जैसे सर्व दृश्य रूप में वही एक बोध मात्र आत्मा ही है उससे भिन्न कुछ नहीं। उसी प्रकार कल्पना से सर्व स्थावर जंगम देश, काल, वस्तुओं के अनेक रूप में भासता हुआ भी वास्तव बोध की दृष्टि से यह सारा चराचर दृश्य एक बोध मात्र निराकार निर्गुण शुद्ध एक रस आत्मा ही है इसी दृष्टि से तुलसीदास जी कहते हैं कि—

चौ०—सीय राम मय सब जग जानी।
करुं प्रणाम जोरि जुग पानी।

इसीलिये रामायण में जहां-जहां आत्मानुभवी पुरुषों की आत्म दृष्टि का वर्णन आया है वहां-वहां उन्होंने अपनी यथार्थ अनुभव दृष्टि से आत्मा रूप राम का यही निर्गुण निराकार बोध मात्र ही स्वरूप का वर्णन किया है। रामायण के बालकाण्ड में आत्मादर्शी राजा जनक ने आत्मा रूप राम का यही स्वरूप वर्णन किया है कि—

चौ०—व्यापक ब्रह्म अलख अविनाशी।
चिदानन्द निरगुन गुन राशी॥
मन समेत जेहि जान न बानी।
तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥

महिमा निगमु नेति कहि कहई।
जो तिहुं काल एक रस रहई ॥

दो०--नयन विषय मो कहुं भयउ, सो समस्त सुख भूल।
सवइ लाभ जग जीव कहं, भए इसु अनुकूल ॥

अर्थात् उन्होंने अपनी अनुभव रुप दृष्टि से आत्मा रूप राम का यह सब वर्णन किया है कि आत्मा रूप राम देश काल वस्तु के परिच्छेद से रहित हैं अतः यही व्यापक ब्रह्म है। इन्द्रिय से नहीं जाना जाता अतः अलख है। कभी अभाव को प्राप्त नहीं होता अतः अविनाशी है, सदा बोध रूप में आप से आप भान होता है और सर्व उपाधि से रहित है अतः चिदानन्द है, तीनों गुणों से रहित है अतः निर्गुण है। सब गुणों का प्रकाशक अधिष्ठान रूप है अतः गुण राशि है। मन वाणी का अविषय है। कल्पना से भी अतीत है इसको वेद में सब दृश्य का बोध करके शेष रूप का वर्णन किया है। भूत, वर्तमान और भविष्य रुप तीनों कालों में सम निर्विकार ही रहता है। अतः एक रस है। अर्थात् कल्पना रूप दृश्य की उत्पत्ति, स्थिति और लय में सदा अपरिणामी ही रहता है! अतः एक यह आत्मा रुप राम मुझे अपनी बोध दृष्टि रुप अपना ही रुप करके प्रत्यक्ष भान हो रहा है। यह

की राशी रुप है। इसकी साक्षात् उपलब्धी रुप अकुलता से सर्व दुःखों की अत्यन्त निवृति हो जाने से सभी लाभ की मुझे प्राप्ति हो गई है। रामायण के अयोध्या काण्ड में आत्म-दर्शी श्री बाल्मीकि जी ने आत्मा रुप राम का उत्तम दृष्टि से साक्षात् अनुभव करके इस प्रकार वर्णन किया है--

चौ०--जगु पेखन तुम देखनि हारे।
विधि हरि शभु नचावनि हारे॥
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा।
और तुम्हहिं को जाननि हारा।
सोई जाने जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होइ जाई॥
चिदानन्द मय देह तुम्हारी।
विगत विकार जान अधिकारी॥
सो०--राम सरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धिवर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह॥

अर्थात् यह आत्मा रूप राम सब दृश्य जगत् का दृष्टा है और सर्व दृश्य जगत् को सत्ता स्फूर्ति देनेवाला है, किन्तु इस आत्मा रुप राम का और कोई जानने वाला दृष्टा नहीं है। इस वोध रूप राम को जानते ही वृति बोध रुप ही हो जाती है : यह चिदानन्द सदा निर्विकार है। यह मन

बुद्धि से नहीं जाना जाता, क्योंकि यह उनका आप ही प्रकाशक है। यह पारावार से रहित अपार अकथनीय है। सर्व दृश्य से अतीत केवल चिन्मात्र अपने में आप ही स्थित है। इससे भिन्न कुछ नहीं और रामायण के उत्तर काण्ड में आत्मदर्शी सन्त कागभुसुण्ड जी ने भी साधक रुप गरुड़ जी के प्रति आत्मा रुप राम का इस प्रकार स्वरुप वर्णन किया है कि—

चौ०—सोइ सच्चिदानन्द घन रामा।
अज विज्ञान रुप बल धामा॥
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।
अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता।
समदरशी अनवद्य अजीता॥
निर्मम निराकार निर्मोहा।
नित्य निरंजन सुख संदोहा॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी।
ब्रह्म निरीह विरज अविनाशी॥
इहां मोह कर कारण नाहीं।
रवि सन्मुख तम कबहुं कि जाहीं॥

दो०—जथा अनेक वेष धरि, नृत्य करइ नट कोई।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपुन होय न सोई॥

अर्थात् यह आत्मा रुप राम सत-चित आनन्द रूप है। यह एक मात्र ठसाठस भरपूर है अतः घन है। जन्म रहित अज है सदा वोध रुप सर्व समर्थ है। यह आप ही और अपने में ही व्यापी हुई है, अतः व्यापक व्याप्य सव आप ही हैं। यह अखण्ड और अनन्त रुप है। सम्पूर्ण दृश्य के उत्पन्न, स्थित और लय करने की इसमें अमोघ शक्ति है। यह गुणों से अतीत निर्गुण और सदा शुद्ध है, सब इन्द्रियों से रहित है। यह सदा सम शान्त माया मल से रहित निरामय है। दृश्य से रहित है अतः निर्मम और निराकार है। नित्य आनन्द रुप है, यह आत्मा रुप राम अखण्ड वोध रुप होने से इसमें स्वाभाविक अज्ञान का उसी प्रकार अभाव है जिस प्रकार कि सूर्य के प्रकाश में तम रुप रात्री का स्वाभात्रिक अभाव रहता है, और जैसे एक नट कल्पना से अनेक वेष धारण करके अनेक रुपों में भासने लगता है, फिर भी वह वास्तव में एक नट ही है। उसी प्रकार एक अखण्ड वोध रुप आत्मा ही कल्पना से स्थावर जंगम रुप अनेक आकारों में भासती है, परन्तु वास्तव में वोध दृष्टि से यह सब एक अखण्ड वोध ही वोध है, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। एक आत्मा रुप राम सदा अपने आप में ज्यों का त्यो स्थित है। श्री लोमश जी आदि ने भी इस आत्मा

रुप राम का यही स्वरुप बताया है कि—

चौ०—अकल अनीह अनाम अरुपा।
अनुभव गम्य अखण्ड अनूपा॥
मन गोतीत अमल अविनाशी।
निर्विकार निरवधि सुख राशी॥
सो तैं ताहि तोहिं नहिं भेदा।
वारि वीचि इव गावहिं वेदा॥

श्री लक्ष्मण जी ने निषादराज को आत्म रुप राम का यही रुप बताया है—

चौ०—राम ब्रह्म परमारथ रुपा।
अविगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल विकार रहित गत भेदा।
कहि नित नेति निरुपहिं वेदा॥

श्री विभीषण जी ने भी इस आत्मा का यही रुप वर्णन किया है, लिखा है—

चौ०—तात राम नहीं नर भूपाला।
भुवनेश्वर कालहू कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता।
व्यापक अजित अनादि अनन्ता॥

और आत्मदर्शी सन्त गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज़ जी ने भी इस आत्मा रुप राम का जगह-जगह शुद्ध वुद्ध ब्रह्म रुप करके ही वर्णन किया है। वालकाण्ड में संस्कृत के मंगलाचरण में ही उन्होंने "वन्देऽहं तमशेष कारण परं रामाख्यमीशं हरिम्" अर्थात् "सव दृश्य जगत के प्रकाशक अधिष्ठान रुप आत्मा रूप राम की मैं बन्दना करता हूं" इस प्रकार आत्मरुप राम के शुद्ध चेतन रुप की वन्दना की है। फिर आगे वालकाण्ड में इस प्रकार रुप वर्णन किया है कि–

चौ०–एक अनीह अरुप अनामा।
अज सच्चिदानन्द पर धामा॥
व्यापक विश्व रुप भगवाना।
तेहि धर देह चरित कृत नाना॥

अर्थात् यह आत्मा रुप राम वस्तुतः आप ही आप सर्वत्र प्रगट है, अतः एक है और इसमें कोई क्रिया नहीं, सदा अचल रुप है अतः अनीह है, सदा बोध रुप है अतः रुप रहित अरुप है, और सव नामों का केवल दृष्टा मात्र है अतः अनाम है, जन्मता नहीं अतः अज है। सदा 'मैं हूं' के रुप में ही इसका वजूद है, अतः सत है। इसे स्वाभाविक ही आप से आप अपने होने का अहसास है, अतः बोध रुप चित है। इसमें कोई विकार क्षोभ नहीं अतः सदा निक्षोभ

ान्त आनन्द रुप है। सर्वत्र आप ही आप रमा हुआ है, ाही निर्गुण निराकार रुप आत्मा रुप राम कल्पना मात्र से ारीरधारी नाना प्रकार की चेष्टा करता सा प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में यह निष्क्रिय अचल गुणों से रहित देह, इन्द्रि, मन तथा यावत दृश्य से अतीत केवल सच्चिदानन्द नित्य मुक्त रुप ब्रह्म है। दूसरी जगह गोस्वामी जी ने ही इस आत्मा रुप राम का यह रुप वर्णन किया है।

चौ०—व्यापक एक ब्रह्म अविनासी।
सत चेतन घन आनन्द रासी॥
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी।
सकल जीव जग दीन दुखारी॥

अर्थात् यह आत्म रुप राम सर्वत्र आप ही आप भरपूर है अतः एक और व्यापक ब्रह्म है। सदा प्रगट है कभी अभाव नहीं होता अतः अविनाशी है। सच्चिदानन्द मात्र है। यद्यपि यह परमानन्द रुप सर्व विकारों से रहित शुद्ध मुक्त गुणातीत रुप आत्म रुप राम सबका अपना आप ही है। इसी अपनी आत्मा रुपरामके वास्तव शुद्ध बुद्ध मुक्त बोध रुपको भूलकर यह जीव भावको प्राप्त हो गया है और देहाभिमान करके दृश्य की दृढ़ आस्था करके ममता [illegible] आदि करके मिथ्या ही कष्ट का अनुभव [illegible] वास्तव में आत्मा रुप राम देह, इन्द्रिय [illegible]

कल्पित दृश्य से अतीत शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, अचल, अजर, अमर अखण्ड, एक रस, परिपूर्ण, सच्चिदानन्द मात्र निराकार और निर्गुण रुप ही है। अतः आत्मा ही राम है और इसका शुद्ध बुद्ध मुक्त निराकार निर्गुण ही वास्तविक रूप है और कल्पना से शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा सर्व देश, काल, वस्तुओं के अनेक साकार और सगुण रुप में भी यही भास रहा है। अतः यह बोध रुप आत्मा ही सर्वत्र अपने आप ही आप में सदा ज्यों का त्यों स्थित है। यही वास्तविक अनुभवी सिद्धान्त है जो यथार्थ अध्यात्म बोध दृष्टि के प्राप्त होने से ही अपने प्रत्यक्ष निरन्तर अनुभव होता है। इसीलिए सभी जीवन्मुक्त महात्माओं की यह अपनी आत्मानुभवी वास्तविक निज स्वरुप की एक यही बोध दृष्टि है कि आत्मा सदा शुद्ध बुद्ध मुक्त अचल अखण्ड एक रस अजर अमर सच्चिदानन्द निराकार निर्गुण तथा आप ही आप अपने में ही सदैव ज्यों का त्यों स्थित है, इसीलिए आत्मदर्शी भगवान शिव जी ने आत्म रुप राम की वन्दना की जिससे कि हमने यह अध्यात्म रामायण प्रारम्भ की थी।

चौ०—झूटेउ सत्य जाहि बिन जाने।
जिमि भुजङ्ग बिन रजु पहिचाने॥

जेहि जाने जग जाइ हिराई ।
जागे यथा स्वप्न भ्रम जाई ।।
वन्दउ वाल रुप सोइ रामू ।
सब विधि सुलभ जपत जिस नामू ।।

इस रामायण रहस्य को जो साधक आत्मानुभवी महात्माओं से श्रद्धा सेवा भाव पूर्वक अध्ययन करेगा और इसके अनुसार अपनी निष्ठा करेगा तो उसे अवश्य स्वरुप का साक्षात्कार हो जावेगा और जन्म मरण रुप सर्व दुखों की अत्यन्त निवृत्ति होकर परम शान्ति की प्राप्ति हो जायेगी और यह कृतकृत्य हो जावेगा ।

—:०:—

आठवां अध्याय

शिव एवं राम

श्री रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान शिव का विश्वास एवं गुरु के रुप में चित्रण किया है, तथा भगवान राम का साक्षात् परम ब्रह्म के रुप में नरुपण किया है। भगवान शिव को भगवान राम के सेवक, स्वामी, सखा भी बताया है, सो इस रहस्य को अब हम वर्णन करते हैं।

श्लोक-भवानी शङ्करौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रुपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाःस्वान्तः स्थमीश्वरम्॥

गोस्वामी जी इस उपरोक्त श्लोक में भगवान शिव को विश्वास रुप में स्वीकार करके वन्दना की है और कहा है कि उस विश्वास रुप शिव की शरण में आए बिना अपने अन्तःकरण में विराजमान ईश्वर का कभी अनुभव ही नहीं हो सकता। इससे अगले श्लोक में भगवान शिव को गुरु रुप में स्वीकार करके वन्दना की है और कहा है कि गुरु रुप शिव के ही आश्रित होकर कुटिल से कुटिल मनुष्य भी चन्द्रमा के समान संसार में पूज्य हो जाता है।

श्लोक—वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणाम ।
यथाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ।

गोस्वामी जी ने शिव ज़ी की महिमा में निम्न चौपाइयां वर्णन की है ।

चौ०—जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी ।
सो न पावे मुनि भक्ति हमारी ॥

अर्थात् जिस पर भगवान शिव कृपा नहीं करते वह हमारी भक्ति नहीं प्राप्त कर सकता । इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिस पर गुरु रुप शिव कृपा नहीं करते वह भगवान का प्रेम कभी नहीं प्राप्त कर सकता । भगवान की भक्ति के लिए गुरु की शरणापन्न होकर उन्हें अपने सेवा द्वारा प्रसन्न करके उनकी कृपा प्राप्त करनी चाहिये । जब तक कोई भगवान में अटूट विश्वास रुप शिव का जीवन में वरण नहीं करता, तब तक उसके हृदय में भगवान की भक्ति प्रगट हो ही नहीं सकती । दूर चौपाई में कहा है—

चौ०-बिन छल विश्वनाथ पद नेहू।
राम भक्त कर लक्षण एहू॥

जो छल कपट त्याग कर भगवान विश्वनाथ के चरणों में प्रेम करता है वही सच्चा राम भक्त है। इसका भी यही तात्पर्य हुआ कि जो गुरु रुप शिव के चरणों में निष्कपट भाव से प्रेम करता है, उसे ही राम भक्ति प्राप्त होती है, और जो प्रभू में अटूट विश्वास रुप शिव को हृदय में स्वीकार करता है तो वही सच्चा राम का भक्त होता है और लिखा है कि--

चौ०--शिव द्रोही मम दास कहावा।
सो नर मोहे स्वपने नहिं भावा॥

जो शिव से द्रोह करता है और मेरा भक्त होने का दावा करता है, ऐसा नर मुझे स्वप्न में भी अच्छा नहीं लगता। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो गुरु रुप शिव से द्वेष रखता है और राम भक्ति करता है ऐसा नर भगवान को स्वपने में भी अच्छा नहीं लगता, या जो भक्त भक्ति तो करता है पर भगवान पर विश्वास नहीं करता वह भगवान

को स्वपने में नहीं भात। । रामायण में और भी शिव के विषय में लिखा है--

दो०--औरउ एक गुप्त मत, सबहि कहूं कर जोर।
शंकर भजन बिना नर, भक्ति न पावेई मोर ॥

भगवान राम ने अयोध्या के सब नगर वासियों को बुलाकर प्रेम से कहा कि मैं एक वात सबको हाथ जोड़कर कहता हूं कि भगवान शिव के भजन बिना कोई भी मनुष्य मेरी भक्ति नहीं प्राप्त कर सकता। इसका तात्पर्य भी यही हुआ कि गुरु रुप शंकर की भक्ति किये बिना प्रभू की भक्ति कभी भी प्राप्त नहीं की जा सकती। बिना विश्वास रुप शिव की शरण लिये बिना अर्थात् हृदय में भगवान की भक्ति कभी भी प्राप्त नहीं की जा सकती। जब श्री नारद जी का मुख भगवान ने बन्दर का कर दिया और उसे कन्या ने नहीं वरण किया, तब नारद ने भगवान को बहुत खोटा खरा कहा, किन्तु जब भगवान ने अपनी माया दूर की तो नारद जी को अपनी करनी पर बड़ा पश्चाताप हूआ। तब उसने भगवान से कहा कि हे

चौ०–बिन छल विश्वनाथ पद नेहू।
राम भक्त कर लक्षण एहू ॥

जो छल कपट त्याग कर भगवान विश्वनाथ के चरणों में प्रेम करता है वही सच्चा राम भक्त है। इसका भी यही तात्पर्य हुआ कि जो गुरु रुप शिव के चरणों में निष्कपट भाव से प्रेम करता है, उसे ही राम भक्ति प्राप्त होती है, और जो प्रभू में अटूट विश्वास रुप शिव को हृदय में स्वीकार करता है तो वही सच्चा राम का भक्त होता है और लिखा है कि--

चौ०--शिव द्रोही मम दास कहावा।
सो नर मोहे स्वपने नहिं भावा ॥

जो शिव से द्रोह करता है और मेरा भक्त होने का दावा करता है, ऐसा नर मुझे स्वप्न में भी अच्छा नहीं लगता। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो गुरु रुप शिव से द्वेष रखता है और राम भक्ति करता है ऐसा नर भगवा को स्वपने में भी अच्छा नहीं लगता, या जो भक्त भक्ति त करता है पर भगवान पर विश्वास नहीं करता वह भगवा

प्रेरणा देते हैं इस प्रकार गुरु रुप शिव भगवान के स्वामी हुए और वास्तव में दोनों एक सच्चिदानन्द तत्व ही दो हो गये हैं। इस प्रकार दोनों परस्पर अभिन्न होने से सखा भी हुए। इस प्रकार गुरू रुप शिव भगवान के सेवक, स्वामी तथा सखा सभी हैं। यह रामायण से स्पष्ट मालूम पड़ता है।

भगवान राम को रामचरित मानस में गोस्वामी जी साक्षात् परब्रह्म के रुप में वर्णन किया है। इसे अब स्पष्ट करते है।

गोस्वामी जी ने भगवान राम के लिए कहा है–

चौ०---जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू।
मायाधीश ज्ञान गुण धामू॥
सबकर परम प्रकाशक जोई।
राम अनादि अवधपति सोई॥

अर्थात् यह सारा जगत् दृश्य है और राम ही एकमात्र के दृष्टा हैं। सारे दृश्य जड़ जगत् को जो अपनी चेतन सत्ता देकर चेतन करता है वह परम चैतन्य ही राम है वह

भगवान–

चौ०–मैं दुर्वचन कहे वहुतेरे
कह मुनि पाप मिटहिं किमि मेरे।

भगवान ने कहा कि--

चौ०--जाय जपो शङ्कर शत नामा
हृदय होय तुरत विश्रामा

अर्थात् तुम जाकर गुरु रुप शिव की स्तु
तुम्हारे सब पाप निवृत होकर शान्ति मिलेगी
तात्पर्य हुआ कि किस प्रकार गुरु रुप शिव
जपते हैं और दूसरों से जपवाते हैं जैसा
मानस में लिखा है।

चौ०--महामन्त्र जेहि जपत महेश
काशी मुक्ति हेतु उपदेश

इस प्रकार तो गुरु रुप में शिव भगवान
हुए और राम अपने भक्तों को रु

अर्थात् जो गुणों से अतीत निर्गुण हैं। रूप से अतीत अरूप निराकार है। इन्द्रियों से अतीत होने से अलख है। जन्म से रहित अज है वही सच्चिदानन्द परब्रह्म ही भगतों के प्रेम वश सगुण रूप में राम श्याम के रूप में प्रगट होकर भक्तों को सुख देता है। इसमें भी भगवान राम को साक्षात् सच्चिदानन्द परब्रह्म रूप ही वर्णन किया है। श्री लक्ष्मण जी भी निषाद को राम का वर्णन कहते हैं।

चौ०—राम ब्रह्म परमारथ रूपा।
अविगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल विकार रहित गत भेदा।
कह नित नेति निरूपहिं वेदा।

अर्थात् भगवान राम तो साक्षात् परमब्रह्म हैं। अनादि उपमा से रहित अद्वितीय निर्विकार हैं। वेद इनको नेति नेति कहकर वर्णन करता है। सो इस प्रकार रामजी

अनादि और अनन्त है। इस प्रकार साक्षात् परमब्रह्म हो बताया है। दूसरी जगह लिखा है।

चौ०जग पेखन तुम पेखन हारे।
विधि हरि शम्भु नचावन हारे॥
तेऊ न जानइ मरम तुम्हारा।
और तुम्हीं को जानन हारा॥
चिदानन्दमय देह तुम्हारी।
विगत विकार जान अधिकारी॥
तुम्हरी कृपा तुम्हीं रघुनन्दन।
जानहीं भगत, भगत उर चन्दन॥

अर्थात् हे राम ! तुम ब्रह्मा, विष्णु, शंभु को भी ने वाले परब्रह्म हो। तुम चिदानन्द रुप निर्विकार हो तुम्हारी कृपा से ही कोई तुम्हारा प्रेमी तुम्हें जानता है यहा देखता है नहीं कहा। जानता है कहा। जाना तो परब्रह्म को ही जाता है। सो राम को साक्षात् परब्रह्म रुप से ही यहां वर्णन किया है। दूसरी जगह लिखा है।

चौ०—अगुण अरुप अलख अज जोई।
भक्त प्रेम वश सगुण सो होई॥

अर्थात् जो गुणों से अतीत निर्गुण हैं। रूप से अतीत अरूप निराकार है। इन्द्रियों से अतीत होने से अलख है। जन्म से रहित अज है वही सच्चिदानन्द परब्रह्म ही भगतों के प्रेम वश सगुण रूप में राम श्याम के रूप में प्रगट होकर भक्तों को सुख देता है। इसमें भी भगवान राम को साक्षात् सच्चिदानन्द परब्रह्म रूप ही वर्णन किया है। श्री लक्ष्मण जी भी निषाद को राम का वर्णन कहते हैं।

चौ०–राम ब्रह्म परमारथ रूपा।
अविगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल विकार रहित गत भेदा।
कह नित नेति निरूपहिं वेदा।

अर्थात् भगवान राम तो साक्षात् परमब्रह्म हैं। अनादि उपमा से रहित अद्वितीय निर्विकार हैं। वेद इनको नेति नेति कहकर वर्णन करता है। सो इस प्रकार रामजी

का रामचरित मानस में साक्षात् परम ब्रह्म रूप ही वर्णन किया गया है। गुरू रुप शिव की भक्ति से ही राम रू परब्रह्म की प्राप्ति होती। यह निर्विवाद सत्य सिद्धांत हैं यही सिद्ध हुआ।

हरि ॐ तत् स

इति शुभम